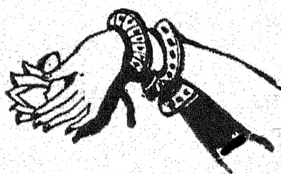
विनोबा की ज्ञान-गंगा में

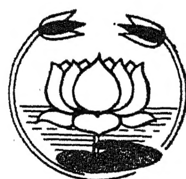


डा॰ ज्ञानवती दरबार

विनोबा की ज्ञान-गंगा में

लेखिका
डा० ज्ञानवती दरबार

प्रस्तावना
डा० राजेन्द्रप्रसाद



१९६१
रंजन-प्रकाशन, नई दिल्ली

प्रकाशक : रंजन-प्रकाशन,
७, टॉल्स्टाय मार्ग
नई दिल्ली

संस्करण : द्वितीय संस्करण : १९६१
मूल्य : अढ़ाई रुपये

मुद्रक : नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
१०, दरियागंज
दिल्ली

प्रकाशकीय

विनोबा और उनका भूदान-आंदोलन बीसवीं सदी की ऐसी क्रांतिकारी घटना है, जिसने सामान्य जनता तथा प्रबुद्ध मस्तिष्कों को एक साथ आकर्षित किया है। इस संबंध में बहुत-सा साहित्य पिछले दशक में प्रकाशित हो चुका है और हो रहा है। परन्तु उपलब्ध साहित्य में अधिकांश ऐसा है, जिसमें भूदान-यज्ञ का सैद्धांतिक पक्ष उभरा है और जिसमें विनोबा के विचारक रूप के ही दर्शन होते हैं।

अभी ऐसे साहित्य की कमी है, जिसमें विनोबा की प्रकृति, उनके दैनिक जीवन-क्रम तथा छोटी-से-छोटी बात पर, उनके मौलिक दृष्टिकोण पर प्रकाश पड़ता हो। प्रस्तुत पुस्तक द्वारा इसी अभाव की पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक की लेखिका राष्ट्रपति की निजी सचिव हैं, यह बात विशेष नहीं है; विशेष बात है उनका विनोबा के प्रति आत्मीयता से सराबोर पूज्यभाव और उनका निकट-सान्निध्य। वह विनोबा के साथ चांदील में एक मास रहीं तथा उन्होंने तिथि-क्रम से जो डायरी रक्खी है, वही इस पुस्तक का विषय है।

पुस्तक में विविध विषयों पर विनोबा के विचारों के अतिरिक्त उनके ऐसे रूप की झांकी मिलती है, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। विचारों और भावनाओं से समन्वित यह पुस्तक सहज पठनीय हो गई है।

आशा है, विनोबा के स्वभाव और विचारों पर प्रकाश डालनेवाली इस पुस्तक का स्वागत होगा।

द्वितीय संस्करण

तीन ही महीने के बाद यह द्वितीय संस्करण पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए हमें खुशी होती है। पुस्तक की इस लोकप्रियता से हमें प्रोत्साहन मिला है। इसके लिए हम अपने गुणी पाठकों के कृतज्ञ हैं।

श्री मार्तण्डजी उपाध्याय ने अपना बहुमूल्य समय देकर पुस्तक को परिष्कृत किया है, इस स्नेह-सौजन्य के लिए हम उनके आभारी हैं।

हमारा विश्वास है कि प्रथम संस्करण के समान ही इस द्वितीय संस्करण को भी सहृदय पाठक प्रेम से अपनाएंगे।

१५ अगस्त, १९६१ —संचालक

निवेदन

सन १९५३ की बात है जब पूज्य विनोबा बहुत बीमार हुए थे, और उन्हींके शब्दों में "एक प्रकार से यमराज का दरवाजा" खड़-खड़ा आये थे, तब भी वहां खड़े बाबा अडिग थे कि दवा नहीं लेंगे। यह सबकुछ देखकर और जानकर सभी का चिन्तित होना स्वाभाविक था। जब किसीकी न चली तो पूज्य राजेन्द्रबाबू दिसम्बर में उन्हें देखने गये और पूरे स्नेह-भाव और श्रद्धा से उन्होंने बाबा से दवा लेने का आग्रह किया। जो स्वयं भावना और श्रद्धा का मूर्तरूप हो, उसके आग्रह को टालना कठिन था। इस स्नेह-भावना के आगे ज़िद नम्रभाव से झुक गई और बाबा ने दवा लेना आरम्भ किया। देश ने संतोष की एक सांस ली। मैं यह सब देखकर विह्वल होती। बाबा का स्नेह मैंने अपने गृहस्थ-जीवन के आरम्भ से ही पाया है और उस नवजीवन में उनके आशीर्वाद के साथ ही पदार्पण किया है। अपने नये जीवन में सास और श्वसुर दोनों के ही स्नेह से मैं वंचित रही। नौ महीने की उम्र में ही मां-बाप दोनों की गोदी खोकर बाबा के 'बुद्धि'[1] ने बचपन में ही काकाजी (स्व० जमनालालजी बजाज) के कारण बाबा की गोद पा ली थी इसलिए मुझे अनायास ही एक ऐसे महापुरुष बाबा के रूप में मिल गये, जिनका सहज प्यार मैं आरम्भ से ही पा सकी। इसी सम्बन्ध के कारण मैं बाबा के पास जाने को अकुला रही थी । जब राजेन्द्रबाबू जनवरी में दिल्ली वापस आये तो मैंने विनोबा के

---

१. श्री बुद्धसेन दरबार, जिन्हें बाबा प्यार से 'बुद्धि' कहकर पुकारते हैं।

पास जाने की इच्छा व्यक्त की और उन्हींकी कृपा से मुझे बाबा के पास जाने और रहने का सुयोग मिल गया।

स्थिति यह थी कि बाबा ने बीमार रहते हुए भी अपनी पार्टी के सब लोगों को भूदान के काम के लिए स्थान-स्थान पर भेज दिया था। उनके पास केवल महादेवी ताई थीं, जो सदा उनकी सेवा में रहती थीं। ऐसे समय मैं उनके पास पहुंच गई और पूरे एक महीने के लिए बाबा के चरणों में रह सकी। बीमारी के कारण ही बाबा चांदील में स्थिर थे और उनकी पदयात्रा अभी स्थगित थी। बाबा इस कमजोरी में भी इतना काम कर लेते थे कि देखकर आश्चर्य होता था। उनका अध्ययन-चिन्तन उसी नियम से प्रातः तीन बजे आरम्भ हो जाता था। मेरे लिए तो वह समय ऐसा था मानो ऋषि-मानस से बहती ज्ञान-गंगा के तट पर बैठी मैं ज्ञानामृत का पान कर रही हूं। इसी अविरल बहती धारा में से मैं जो कुछ भी संचय कर सकती, करने का यत्न करती, और डायरी के ये पन्ने उसीका संचय-मात्र हैं। इस छोटी-सी 'गागर' में बाबा के ज्ञान-सागर को भरना मेरे लिए कठिन ही नहीं असम्भव बात थी। मैंने तो गंगाजल की एक अंजलि की तरह इसे अपने पास रखने के लिए भर लिया। यहां आने पर कुछ स्नेही स्वजन इस 'गंगाजल' में से थोड़ा-थोड़ा हिस्सा चाहने लगे और मदालसा दीदी ने मुझसे आग्रह किया कि इसका वितरण मैं इस तरह करूं ताकि अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को यह मिल सके। बस, उसी आग्रह की यह प्रत्यक्ष स्वीकृति है। यह मेरे ज्ञान का नहीं, केवल भाव का दर्शन है। आज इस भाव को बांटकर मुझे खुशी हो रही है।

• बाबा के चरणों में बैठकर इस ज्ञानामृत का पान करते हुए मैं

आसपास के दृश्य को भी थोड़ा-बहुत देख सकी। चांदील का वह स्थान मेरे लिए अवश्य देव-मंदिर बन गया था; पर बाबा ने तो जिस गांव में पदार्पण किया, वही देव-मंदिर बन गया। इस देव-मंदिर में दीप्तिमान दिव्य ज्योति का प्रकाश आत्म-मंदिर में दीप्त हो रोम-रोम में मानो उद्भासित हो उठता है। वस्तुतः बाबा के लिए तो संपूर्ण भारत ही एक भव्य मंदिर है, जिसमें स्थित भारतमां की वह निशि-वासर वंदना करते हैं। एक दिन सुबह घूमते समय एक भाई ने बाबा से पूछा था—"बाबा, आपका घर कहां है?" और बाबा का संक्षिप्त उत्तर था—"देश के जिस कोने में मैं पैर रखता हूं वही मेरा घर बन जाता है।" भगवान् वामन ने तीन पग धरे कि सारी पृथ्वी अपनी बना ली। विनोबा का तो अभी एक चरण ही पड़ा है कि संपूर्ण भारत पर उनकी आभा व्याप्त हो गई है और बाबा स्वयं ध्यान-मग्न हो भारतमां की सतत सेवा में लगे हैं।

पूज्य राजेन्द्रबाबू को साभार नमन करके, जिनके कारण मुझे यह सुयोग मिला, मैं इस आत्मज्ञानी संत, प्रेमभक्त पुजारी और कर्मयोगी विनोबा के चरणों में प्रणाम करती हूं।

पाठकों के लिए तो यह मेरा एक आत्मनिवेदन-मात्र है। हो सकता है, इसमें उन्हें कुछ असंगतियां दिखाई दें। उनपर ध्यान न देकर केवल बाबा की मूल भावना और विचार ही ग्रहण करेंगे तो मैं अपना प्रयत्न सार्थक समझूंगी।

—ज्ञानवती दरबार

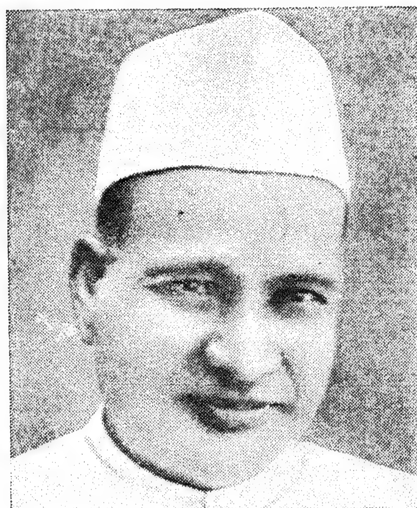
राष्ट्रपति-भवन,
नई दिल्ली
११ फरवरी, १९६१

विषय-सूची

विनोबा-स्तवन

संत विनोबा की वर वाणी,
यदि सुन सकें द्विपद हम प्राणी;
तो देखेंगे धरा बन गई उन्नत स्वर्ग समाना है।
देव कहेंगे स्वयं कि उनसे अच्छा नर का बाना है ।।

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'



●

प्रेरणास्रोत स्वर्गीय काकाजी की

पुण्यस्मृति में,

जिन्हें मैंने सदा

अमर स्मृतियों में ही

देखा

●

राष्ट्रपति-भवन
नई दिल्ली



प्रस्तावना

इस पुस्तक के कुछ अध्याय मैंने पढ़े हैं और कुछ स्वयं लेखिका से सुने हैं। विनोबाजी की भूदान-यात्रा के संबंध में इन दिनों बहुत कुछ प्रकाशित हुआ है। उनके प्रवचनों के तो कई संग्रह छप चुके हैं। किन्तु उनकी दिनचर्या का आंखों-देखा विवरण और सर्वोदयी कार्यकर्ताओं तथा विनोबा से मिलने आनेवालों के साथ उनकी बातचीत के संबंध में अधिक नहीं लिखा गया है। और फिर विनोबा के चांदील-प्रवास के संबंध में तो जनसाधारण की जानकारी बहुत कम है। उस समय विनोबाजी अस्वस्थ थे, फिर भी शारीरिक दुर्बलता के वशीभूत न होकर वे किस प्रकार अपना काम यथापूर्व करते थे, यह एक बोधप्रद कहानी है। उनके गिरते हुए स्वास्थ्य की चिन्ता देश-भर को भले ही हुई हो, पर स्वयं उन्हें इसका ध्यान कभी नहीं रहा, यहां तक कि दवा खाने तक से वे इनकार करते रहे। उस अवधि में उनकी पद-यात्रा स्थगित थी, किन्तु उनका प्रातः-भ्रमण बराबर जारी रहा। विनोबा बहुत गहरे चिन्तक हैं, और प्रातःकाल के शांत समय में विचारों को विशेष स्फूर्ति मिलती है, अतः उनके चिन्तनस्वरूप इन पन्नों में उन विचारों का संकलन विशेष मूल्य की वस्तु है। साथ ही उनके विचारों का केन्द्रबिन्दु बराबर सर्वोदय-कार्य और ग्राम-सेवा रहा है। उसका दर्शन और चिन्तन भी हम इसमें पाते हैं।

भूमिदान-आन्दोलन का हमारी आर्थिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा और उससे ग्रामीण जनता की स्थिति में कहां तक

सुधार हुआ, इस प्रश्न पर संभव है दो मत हों; किन्तु विनोबाजी के विशुद्ध आदर्श और उनकी वाणी के सत्प्रभाव से कोई इनकार नहीं कर सकता। आज की दुनिया में वे सात्त्विकता और पारस्परिक सद्भावना के प्रतीक हैं। उनकी विशेषता यह है कि उनके आदर्श व्यावहारिकता से विलग नहीं। यही कारण है कि उनकी ऊंची बात साधारण-से-साधारण ग्रामीण लोग भी समझ लेते हैं।

इस पुस्तिका में विनोबाजी के जीवन और विचारों के संबंध में अच्छी झांकी मिलती है। वर्णन रोचक और भावपूर्ण है, क्योंकि उसका आधार लेखिका की विनोबाजी के प्रति आन्तरिक श्रद्धा और आत्मीयता है। उसके परिवार का विनोबाजी के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है। उसके पति बुद्धसेन दरबार विनोबा के साथ वर्धा में १४-१५ वर्ष रहे हैं। यही कारण है कि जब ज्ञान ने चांदील जाने की इच्छा प्रकट की, मैंने उसे खुशी से अनुमति दी। यह संतोष का विषय है कि ज्ञान ने इस अवसर से स्वयं ही लाभ नहीं उठाया, बल्कि इस पुस्तक द्वारा औरों को भी इसके रसास्वादन का अवसर दिया।

६ अप्रैल, १९६१

राजेन्द्र प्रसाद



अपूर्व मिलन

: १ :

विनोबा के जीवन की कुछ झांकियां

बचपन और शिक्षा

महाराष्ट्र में कुलाबा जिले के गागोदा नामक ग्राम में ११ सितम्बर १८९५ को बालक विनोबा का जन्म हुआ। धन्य है वह माता, जिसने ऐसे लाल का लालन-पालन करते हुए प्रेम और भक्ति से इस फूल को सिंचित किया, जो विकसित होकर देश के हर कोने को अपने गुणों की सुवास से सुवासित कर रहा है।

भक्ति-भावना का अंकुर

अपने बचपन को याद कर विनोबा आज भी बड़ी भक्ति और श्रद्धा से अपनी मां को याद करते हैं। चांदील में जब मैं उनके साथ थी, तो उन्होंने अपनी भक्तिमयी मां का स्मरण करते हुए मुझे सुनाया था कि किस तरह बचपन से ही उन्हें अपनी मां से भक्ति का वरदान मिला। उन्होंने कहा था, "जब मैं छोटा था तो मेरी मां रोज मुझे तुलसी में पानी देने को कहती थी। तुलसी में पानी दिये बिना मुझे कुछ खाने-पीने को नहीं मिलता था। वह पूछती थी, 'कारे विन्या, तुलसीला पाणी घातले का ?' छोटा-सा काम था; पर उससे मुझमें भक्तिभाव आया। कई माताएं भी ऐसी होती हैं, जो छोटी-छोटी बातों से बच्चे के मन और जीवन में सद्‌भाव और सद्‌गुण पैदा करती हैं। नित्य-नियमित रूप से थोड़ा और छोटा-सा काम करने पर भी जीवन पर उसका बड़ा असर होता है।" और यह सच है। कितनी ममता और भक्ति से विनोबा अपनी मां को याद करते हैं! उनके हृदय में भक्ति-भाव का अमृतसिंचन उनकी मां ने ही किया है। विनोबा कहते भी थे कि उनकी मां बड़ी ही भक्तिमयी थीं। ये गुण उनके भाइयों में भी आये हैं। विनोबा ही नहीं, उनके छोटे भाई बालकोबा और शिवाजी भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा भगवान के भक्त हैं। ये गुण और भाव तो उनमें मां के पालन-पोषण और वात्सल्य से सिंचित, अंकुरित और विकसित हुए हैं। विनोबा

ने कहा था—"कई माताएं भी ऐसी होती हैं।" उन्होंने यह भी कहा, "बच्चों को भी अपने पूर्व-जन्म के अनुसार वैसे माता-पिता मिलते हैं।" उनकी मां ने नियमित रूप से तुलसी में पानी देने का आग्रह रक्खा, जिससे इन्हें भक्तिभाव मिला। वस्तुतः बच्चे के चरित्र-निर्माण में माता का कितना बड़ा हाथ होता है, यह मैंने इस एक छोटी-सी बात से ही देखा और इस तरह संत विनोबा ने बचपन में ही भक्ति का अमृत-पान किया।

भ्रमण में रुचि

बचपन से ही विनोबा को घूमने-फिरने का अत्यधिक शौक रहा। बाल्यावस्था में अपने गांव के आस-पास की पहाड़ियां, खेत, नदी-नाले आदि कोई ऐसा स्थान न था, जहां वह अनेक बार न जा चुके हों। वह अकेले ही नहीं घूमते थे, संग में अपने बालसाथियों को भी खींच-खींचकर घूमने ले जाया करते थे। किसी भी विद्यार्थी को पुस्तक में माथापच्ची करते देख उन्हें दया आती और वह उससे पुस्तक छीनकर उसे खुली हवा में घूमने ले जाते।

अद्भुत विद्यार्थी

पाठ्यक्रम की पुस्तकों के बजाय बालक विनोबा को आध्यात्मिक पुस्तकों के अध्ययन का अधिक शौक था। तुकाराम-गाथा, ज्ञानेश्वरी, दासबोध, ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, गीता आदि को न मालूम कितनी बार उन्होंने पढ़ा होगा, पर इन पुस्तकों का अध्ययन करते हुए भी स्कूल में किसी विद्यार्थी से पीछे न थे। स्कूल में आखिरी बैंच पर बैठने की उनकी खास आदत थी और वह सिर्फ इसलिए कि जब भी जी चाहे, उठकर आसानी से बाहर जा सकें। जितनी भी देर वह क्लास में बैठते, ऐसा स्थान चुनकर बैठते थे, जहां से बाहर का स्वच्छ आकाश आसानी से दिखाई देता रहे।

जब विनोबा पांचवीं-छठी क्लास में थे तो सहपाठी उनके घर सीखने आया करते थे; पर बाद में उनकी बुद्धिमत्ता तथा शिक्षण-शैली का प्रभाव अन्य विद्यार्थियों पर इतना पड़ा कि उनसे ऊंची क्लास के विद्यार्थी भी उनके पास सीखने और पढ़ने आने लगे। यहां तक कि कई बार तो स्वयं

अध्यापक भी शंका-समाधान के लिए उनके पास आते थे। गणित में विनोबा को विशेष रुचि रही। वह कई बार मजाक में कहा करते हैं कि अध्यात्म-शास्त्र के बाद अगर किसी शास्त्र में मेरी रुचि है तो वह गणितशास्त्र में।

गर्मियों की छुट्टियों में विनोबा भ्रमण-आदि के लिए किसी शीतल स्थान पर या किसी कुटुम्बीजन के यहां न जाकर सहसा किसी सहपाठी मित्र की सेवा करने जा पहुंचते थे और उसकी सेवा-शुश्रूषा में ही अपनी छुट्टियां व्यतीत करते थे। इसी सेवा के आकर्षण तथा आध्यात्मिक प्रभाव से अनेक सहपाठी आज भी उनके साथ उनकी आज्ञा के अनुसार रचनात्मक कामों में लगे हैं। उन्हींके कारण एक-दो सहपाठियों ने ऊंची डिग्रियों का मोह तक छोड़ दिया और कालेज से निकलकर देश-सेवा के काम में लग गये।

विनोबा को डिग्रियों का मोह नाम-मात्र को भी नहीं था। उन्होंने अनासक्त भाव से अपनी सभी सार्टिफिकेटों को अग्नि की भेंट चढ़ा दिया था और उनसे निकलती लौ की ओर इंगित करते हुए अपने मित्रों से कहा था, "देखो, ये कैसे प्रकाशित हो रहे हैं!"

हिमालय की ओर

आध्यात्मिकता की ज्योति बाल्यकाल से ही उनके हृदय में जल रही थी और एक दिन ऐसा आया कि उनमें हिमालय जाने की इच्छा बलवती हो उठी। उन्होंने अपना यह निश्चय अपने साथियों को बताया। फिर क्या था, तीन-चार साथियों के साथ वह निकल पड़े। कुछ समय काशी में रुके। वहां एक स्कूल में पढ़ाने का काम किया। पढ़ाने के पारिश्रमिक-स्वरूप रोज के दो पैसे वह लेते थे, जिसमें से एक पैसे की शकरकंद तथा एक पैसे का दही लेकर संतुष्ट रहते। पढ़ाने के बाद शेष समय में गंगा के तीर पर बैठकर श्लोकों की रचना करते और शाम को वे सारे श्लोक गंगामैया को अर्पित कर देते। उनके साथियों में से एक का नाम भोला था। विनोबा का वह पक्का भक्त था। हर कोई जानता था कि विनोबा बिना परिश्रम किये खाना पसन्द नहीं करते। अतः वह भी चाहे लकड़ी काटना, लकड़ी ढोना आदि काम ही क्यों न करना पड़े, शारीरिक श्रम अवश्य करता था। आज भी यह बात विनोबा के जीवन में है। उन्होंने इसे अपना

एक सिद्धान्त ही नहीं माना है, किन्तु आश्रम में भी इसका सतत प्रयोग किया है।

विनोबा के मन में आध्यात्मिक प्रेम के साथ-साथ देशप्रेम की भावना भी हिलोरें मारा करती थी। देश की गुलामी का खयाल उन्हें हमेशा सताया करता था। उस समय देश की आजादी के लिए किसीके सामने कोई खास कार्यक्रम नहीं था। कुछ इक्के-दुक्के नौजवान हिंसा का आश्रय लेकर देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करते थे। विनोबा ने भी देश की आजादी के लिए उस वृत्ति को अपनाना चाहा, पर हिंसक प्रवृत्ति में आनेवाली असत्यता का विनोवा के आध्यात्मिक विचारों से मेल नहीं बैठा। देश को परकीय दासता से मुक्त करने की छटपटाहट उनके दिल को कचोटती रही।

बापू की ओर आकर्षित

उस समय देश में एनी बेसेण्ट, तिलक तथा गांधीजी का नाम काफी प्रसिद्ध था। अपनी शंकाओं के सम्बन्ध में विनोबा ने इन तीनों नेताओं को पत्र लिखे। उत्तर में किसीकी ओर से अच्छे से लेटर-पैड पर, तो किसीकी ओर से मंजी हुई भाषा में सविस्तर उत्तर आये; पर गांधीजी की ओर से जो उत्तर आया उसने विनोबा को सहज आकर्षित कर लिया। उनका पत्र किसी चिकने विदेशी लेटर-पैड पर नहीं, वरन् वेस्ट पेपर का उपयोग करने के हेतु फटे-पुराने कागज पर काली स्याही से मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था। पत्र का मजमून तो विचारयुक्त था ही, पर अन्य बातें भी शिक्षाप्रद थीं। रद्दी कागज, काली स्याही, कलम से लिखे मोटे-मोटे अक्षर भी एक खास संदेश सुना रहे थे। पत्र के भावार्थ के अलावा भी इस विशेष संदेश को विनोबा की कुशाग्र बुद्धि ने जाना। उन्होंने उसके बाद तीन-चार बार गांधीजी से पत्र-व्यवहार किया। आखिर में गांधीजी ने समझ लिया कि विनोवा की तर्कशील शंकाओं का पूरा समाधान दूर वैठकर पत्र लिखने-भर से नहीं होगा। उन्होंने विनोबा को लिख दिया, "मैं यहां सत्य के प्रयोग कर रहा हूं, तुम यहां चले आओ। यहां शायद तुम्हारी शंकाओं का समाधान हो जायगा।"

इसी बीच बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटी के शिलान्यास के अवसर पर दिया हुआ गांधीजी का पहला भाषण भी विनोबा ने सुना। उसका भी उनके मन पर बहुत गहरा असर पड़ा। हिमालय की कन्दराओं में जाकर अध्यात्म-साधना करने के पुराने तरीके से कहीं अधिक गीता में बताये हुए कर्मयोग का समाज में रहकर प्रत्यक्ष प्रयोग करने वाले बापू के विचारों ने विनोबा को आकर्षित किया और इसी कारण बापू के निमंत्रण पर विनोबा साबरमती-आश्रम गये।

साबरमती में

आश्रम में पहुंचने पर विनोबा को खेती का काम सौंपा गया। वह नित्य-नियमित रूप से आठ घंटे मौनपूर्वक कई महीने तक काम करते रहे। उनकी मनोवृत्ति के कारण आश्रम के कुछ लोग तो उन्हें गूंगा ही समझते थे।

एक बार संध्या के समय काम करने के पश्चात् साबरमती के किनारे मैदान में दूर जाकर विनोबा वेद-मंत्रों तथा उपनिषद्-वचनों का उद्‌घोष कर रहे थे। उसी समय अहमदाबाद-कालेज से गुजरात-विद्यापीठ की ओर जाते हुए कुछ कालेज के विद्यार्थियों ने देखा कि आश्रम का कोई आदमी इतने शुद्ध उच्चारण के साथ उपनिषदों का पारायण कर रहा है, तो उन्हें लगा कि अवश्य ही यह कोई विद्वान् है। दूसरे दिन वे विद्यार्थी आश्रम में एक सज्जन के पास गये और कहा कि हमें उस आदमी से संस्कृत सीखनी है। आश्रम के प्रतिष्ठित सज्जन हँसकर बोले, "अरे भाई, उससे संस्कृत क्या सीखोगे, वह तो गूंगा आदमी है।" इसपर विद्यार्थी हँसे और बोले, "नहीं ऐसी बात नहीं है। वह कल शाम ही साबरमती के मैदान में बैठे उपनिषदों का उद्‌घोष कर रहे थे।" इसपर आश्रमवासी भाई को आश्चर्य हुआ और उन्होंने बगीचे में, जहां विनोबा कुदाली लेकर काम कर रहे थे, उनसे जाकर पूछा कि ये विद्यार्थी आपसे संस्कृत सीखना चाहते हैं। विनोबा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इस प्रकार गूंगे विनोबा आचार्य विनोबा बन गये।

वर्धा-आश्रम की स्थापना

कुछ समय के बाद गांधीजी की आज्ञा लेकर एक साल तक विनोबा

ने महाराष्ट्र का भ्रमण किया और ठीक एक साल के बाद वह पुनः साबर-मती-आश्रम में चले आये। स्व० जमनालालजी बजाज ने वर्धा में आश्रम खोलने की अपनी इच्छा बापू के सामने प्रकट की तथा विनोबा को उनसे मांगा। बापू ने स्वीकृति दे दी और इस तरह विनोबा को वर्धा आना पड़ा।

दृढ़-निश्चयी

सन् १९२१ में सत्याग्रह-आश्रम, वर्धा की स्थापना हुई। आश्रम में विनोबा के कई बाल-साथी भी आकर रहने लगे। आश्रम की इमारतें बनते समय कुएं के लिए जगह स्वयं विनोबाजी ने ही पसन्द की। जान-कार लोगों ने कहा कि यहां पानी निकलना मुश्किल है, पर विनोबा ने कहा कि चाहे कितना ही गहरा क्यों न खोदना पड़े, कुआं यहीं खोदा जायगा। मजदूरों के साथ-साथ स्वयं आश्रमवासियों ने भी कुआं खोदने में सहायता की। आखिर पत्थर की चट्टानें फोड़कर नव्वे हाथ पर पानी निकला, जबकि आसपास के अन्य सब कुएं बीस-पच्चीस हाथ ही गहरे होंगे। कुआं खोदते समय पानी निकलता हुआ न देखकर कइयों ने कुएं के लिए उस स्थान को छोड़ देने को कहा, पर विनोवा के निश्चय को कौन बदल सकता था! आज भी इस महान् संत ने ५ करोड़ एकड़ भूमि प्राप्त करने का निश्चय किया है, जिसकी सफलता के लिए वह पूरे संकल्प-बल से लगे हैं। जीवन की हर कृति में उनके इस संकल्प-बल का दर्शन होता है। उस छोटे-से संकल्प से ही चट्टानों में से निर्मल जल का स्रोत फूटा और आज एक बड़े संकल्प-बल से देश में समता और सहृदयता की स्रोतस्विनी वह निकली है।

आश्रम के कठोर कर्ममय वातावरण में अनेक प्रकार के प्रयोग होते रहे। बापू विनोद में कहा करते थे कि साबरमती-आश्रम में कोई आश्रम-वासी काम करने में आलस्य करता हो तो उसे विनोबा के पास भेज दो। इस अखंड कर्मयोगी की कर्म-साधना सच ही बड़ी कठोर थी। कर्मठ विनोबा की सहनशीलता और दृढ़ता का एक किस्सा मुझे याद आ रहा है, जिसे सुनकर मैं दंग रह गई थी। यों तो उनका सम्पूर्ण जीवन ही सहनशीलता

और दृढ़ता का एक आदर्श नमूना है। एक बार की बात है परमधाम, पवनार में विनोबा अध्ययन में मग्न थे, तभी एक बिच्छू ने उनके पैर में काट लिया, पर बिना आह-ऊह किये वह उस जलन और वेदना को सहते हुए ही बैठे रहे। यहां तक कि उनका पैर बिच्छू के जहर से काला पड़ गया। जब वेदना बहुत ही बढ़ गई तो विनोबा ने चरखा मंगाया और चरखा कातते-कातते वह इतने एकाग्र हो गए कि उन्हें न बिच्छू काटने का ध्यान रहा और न वेदना का ही अनुभव हुआ। विरले ही संतों में महानता के ऐसे अद्भुत लक्षण पाये जाते हैं। ऐसे ही सतत एकाग्र चिन्तन और दृढ़ आत्मबल से आज उन्होंने भूदान-यज्ञ का आरंभ कर महान् क्रान्ति का आह्वान किया है।

प्रथम सत्याग्रही

दूसरा महायुद्ध शुरू होने पर अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को भी जबरदस्ती युद्ध की आग में झोंक दिया, जिसके विरोध में गांधीजी ने सत्याग्रह प्रारंभ करने का निश्चय किया। गांधीजी सत्याग्रह सामूहिक तौर पर नहीं, व्यक्तिगत रूप से शुरू करना चाहते थे। कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सामने उन्होंने अपना यह विचार रखा। प्रथम सत्याग्रही के नाते कोई जवाहरलालजी का नाम सोचता तो कोई सरदार पटेल का। सारे देश का ध्यान इस ओर लगा था कि गांधीजी प्रथम सत्याग्रही के रूप में किसको चुनते हैं। एक दिन गांधीजी ने विनोबा के प्रथम सत्याग्रही होने की घोषणा कर दी। किसीने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि बापू विनोबा के रूप में देश को एक नये युग-पुरुष का दर्शन करायेंगे। आज भी विनोबा देश में रामराज्य की स्थापना के लिए प्रथम सत्याग्रही के रूप में ही सामने हैं। देश के इस प्रथम सत्याग्रही ने ही आज देश को पुनः जगाया है, रामराज्य की ओर बढ़ चलने के लिए। जनता भी जाग उठी है। इस संत के महासंकल्प को पूरा करने में जुट गए हैं सर्वोदय के सब सेनानी। देश-सेवकों ने बापू के इस दृढ़-निश्चयी भक्त सत्याग्रही से अहिंसक क्रान्ति का महामंत्र पा लिया है। गरीब जनता ने इस फकीर बाबा के साथ ललकारा है—"भूखी जनता चुप न रहेगी, धन और धरती बंटके रहेगी।" बुद्ध भगवान के शिष्यों की

तरह संत विनोबा के शिष्य निकल पड़े हैं भूदान की भिक्षा के लिए "सबै भूमि गोपाल की" कहते हुए और द्वार-द्वार पर गाते हुए। अग्नि प्रज्वलित हो उठी है भूदान के इस प्रजासूय-यज्ञ की। बापू के "भारत छोड़ो" के महामंत्र से स्वराज्य हासिल हुआ, बाबा के "भूमि दो" के अमोघ मंत्र से ग्रामराज्य हासिल होगा और बापू का रामराज्य का स्वप्न पूरा होकर रहेगा।

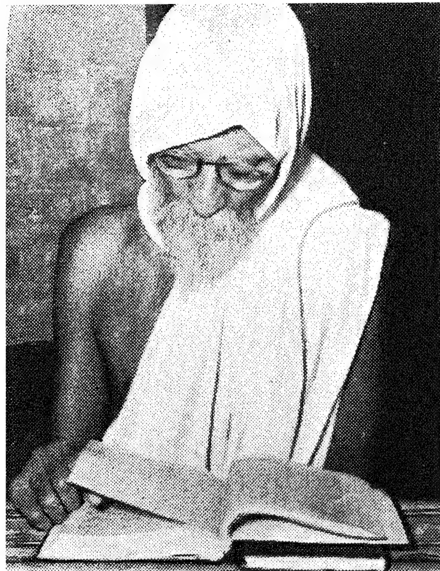
जेल-यात्राएं

विनोबा ने कई बार जेल-यात्रा की। सन् १९३२ में जब वह धूलिया-जेल में थे तो वहां का जेलर भी उनका भक्त बन गया था। उसी जेल में विनोबा ने गीता पर अठारह प्रवचन दिये, जो 'गीता-प्रवचन' के नाम से घर-घर में सरल भाषा में गीता का सन्देश सुना रहे हैं। विनोबा ने अपना संपूर्ण जीवन गीता के उपदेशों के आधार पर बनाया है। किसी भी बात को गीता की कसौटी पर कसे बिना वह स्वीकार नहीं करते। 'गीता-प्रवचन' में उन्होंने कहा है कि "जिस समय मैं किसीसे बोलता होता हूं तो गीता-रूपी समुद्र में तैरता हूं; पर जब मैं अकेला होता हूं तो उसमें डुबकियां लगाता हूं।" सचमुच विनोबा हर घड़ी चिन्तन-मनन में लीन रहते हैं। अध्ययन-चिन्तन में लीन इस संतमूर्ति के पास बैठकर ही नहीं, दूर से भी उस दिव्य आत्मा में से जो एक परम शांति, आह्लादमयी चेतना और गहरी आत्मानुभूति प्राप्त होती है वह वस्तुतः अद्भुत है। बड़े-बड़े साधु-संत तथा योगी जंगलों और वन-पर्वतों में एकान्त-चिन्तन के लिए जाते हैं; किन्तु यह कर्म-योगी निरन्तर कर्म-रत रहता हुआ भी मानो सदा आत्म-लीन और ध्यान-मग्न रहता है। दर्शनशास्त्रों के गहरे अध्ययन से वह आत्म-दर्शन करता है और आत्म-ज्ञान पाता है। इस आत्म-ज्ञान के गहरे स्तल में पहुंचकर ही उसे महान् कर्म की अमर पुण्य प्रेरणा होती है और ज्ञान और कर्म से परिशुद्ध अन्तःगुहा से भक्ति की निर्मल गंगा बह निकलती है, भगवान के मन्दिर की ओर। ज्ञान, कर्म और भक्ति की इस पावन त्रिवेणी में स्नान कर अनेक संतप्त मानव शान्ति और सुख का अनुभव करते हैं। इस बहती गंगा में डुबकी लगाकर मैं सच ही कभी-कभी मंगलमय पुण्य अनुभूतियों से आत्म-विस्मृत-सी हो उठती हूं।

विचार-विमर्श



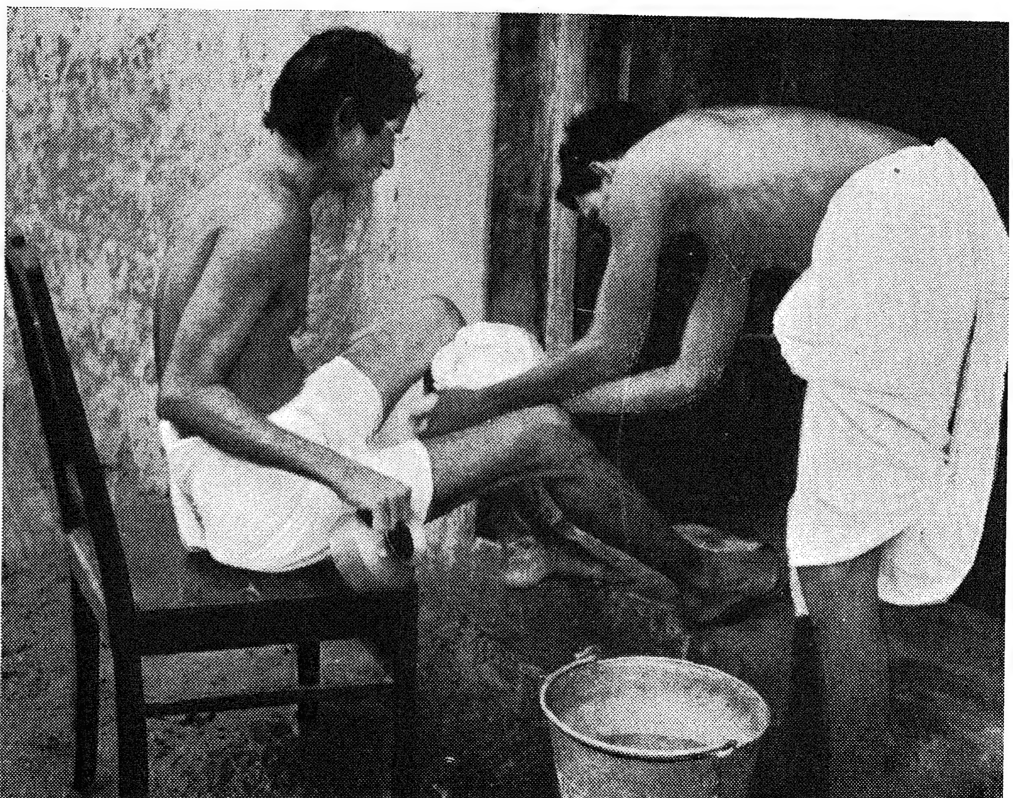
चांदील में
नेहरूजी को तिलक करते हुए
लेखिका



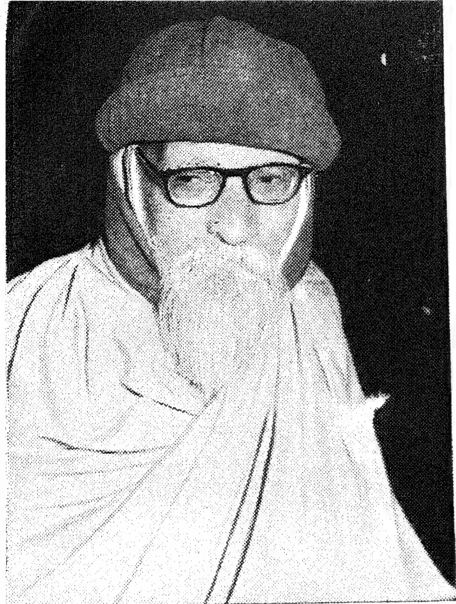
स्वाध्याय में लीन



भूदान-यात्रा पर



यात्रा का
श्रम-परिहार
करते हुए

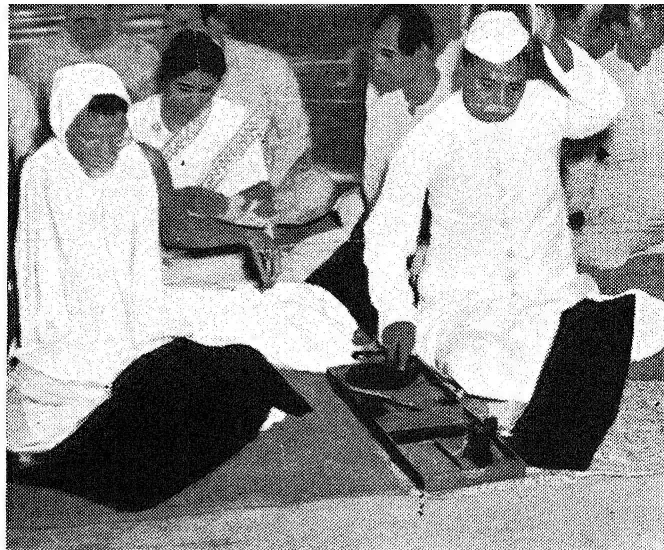


शांति-सेना के सेनानी

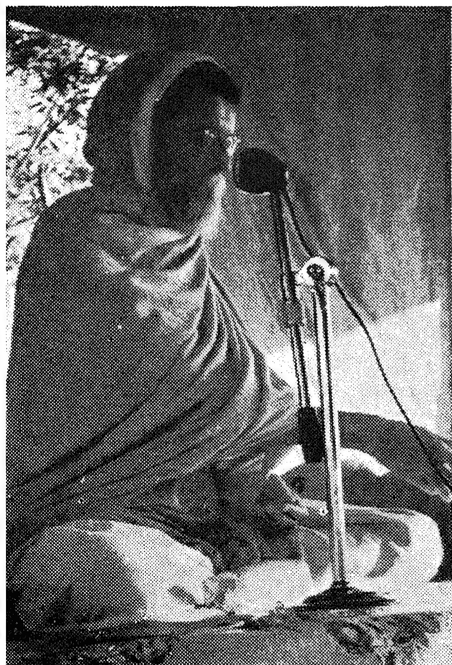


विनोबा के साथ
श्रीमन्नारायण

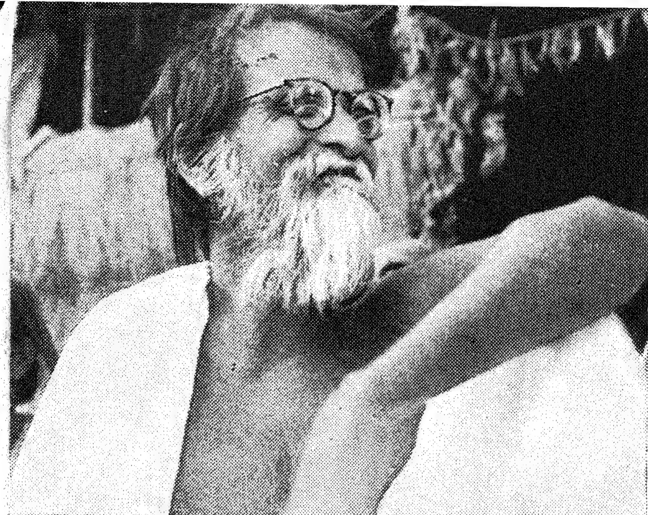
सूत्र-यज्ञ



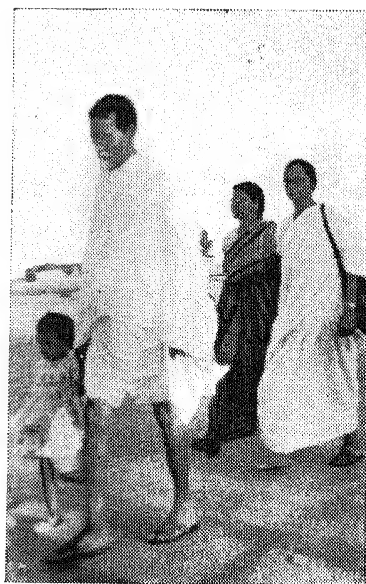
(बाबा और बाबूजी के साथ लेखिका)



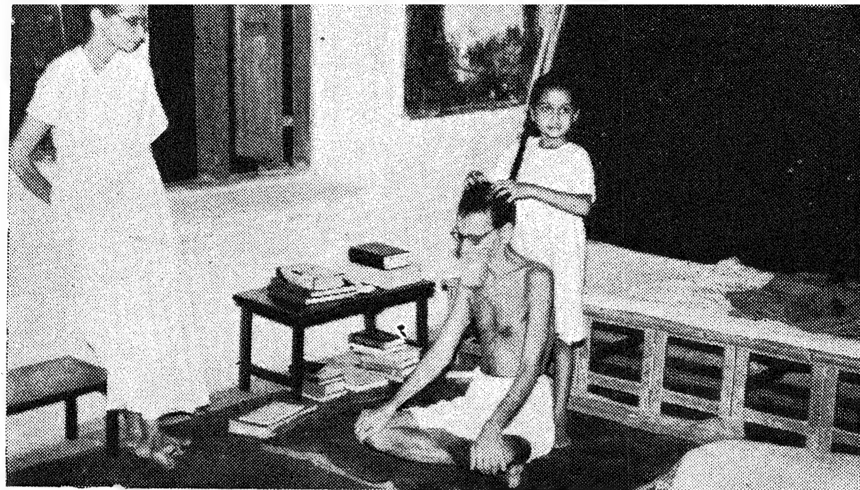
प्रार्थना-स्थल पर



बाल-सुलभ मुस्कराहट



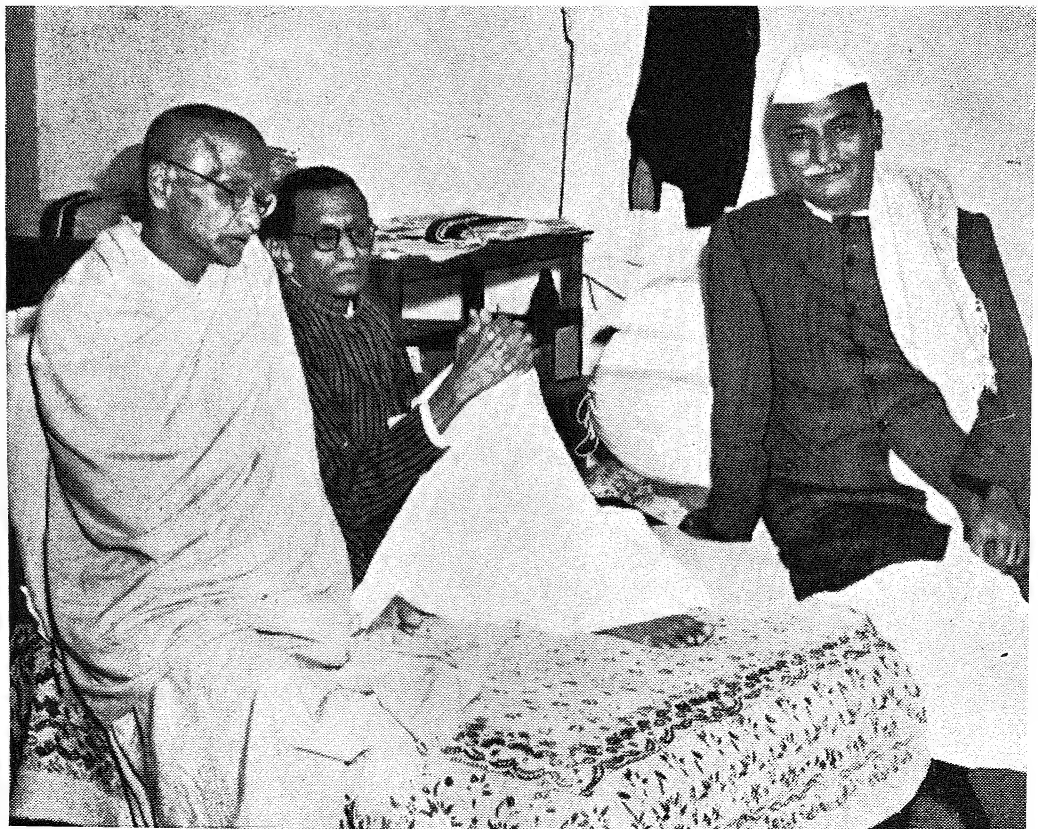
प्रातः-भ्रमण



बाल-विनोद



ग्राम्य-जीवन के बीच
अमेरिकन भाई श्री रे. मेगी से
चर्चा करती हुई लेखिका



गांधीवादी मनीषी
(विनोबा,
किशोरलालभाई
तथा राजेंद्रप्रसाद)

विनोबा की ज्ञान-गंगा में

: १ :

बाबा का स्नेह

चांदील पहुंची

आज ही मैं चांदील पहुंची हूं। दिल्ली से चांदील तक की यात्रा बड़ी सुखद रही। दिल्ली से गोमो तक लक्ष्मीबाबू मेरे साथ थे। एक ही डिब्बे में अन्य कई मुसाफिरों का मिल जाना भी स्वाभाविक ही था। इन यात्रियों में दो लड़कियां इजराइल की भी थीं। एक यहूदी थी और दूसरी ईसाई-यहूदी। उन्होंने मुझे बताया कि वहां तीन तरह के यहूदी होते हैं—यहूदी, ईसाई और मुसलमान। इसके अलावा इजराइल की स्थापना के सम्बन्ध में भी उन्होंने बताया कि किस तरह डा० वाइजमेन ने, जो एक बड़े वैज्ञानिक थे, उसकी स्थापना की और किस तरह उस प्रदेश ने इतनी जल्दी उन्नति की तथा उस प्रगति में वहां की सरकार क्या व कैसा सहयोग देती है। सारा इतिहास बड़ा रोचक था। पूरे देश की आबादी क़रीब चालीस लाख है, याने हमारे देश के एक ज़िले के बराबर। एक ओर इस भौतिक विकास का नमूना था, उसीकी बातें थीं और दूसरी ओर अपने लक्ष्मीबाबू[1] की बातें भी सुन रही थी, जिनमें आध्यात्मिक विकास का पुट था। वह सद्विचार, सदाचार, सत्कर्म और सद्व्यवहार की व्याख्या कर रहे थे। जब हमने भोजन किया तो

---

[1]स्व० लक्ष्मीबाबू, बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ के तत्कालीन अध्यक्ष

उन्होंने आहार-विहार के सम्बन्ध में भी अपने विचार बताये। लक्ष्मीबाबू आहार में बड़े व्रती हैं। हाथ का कुटा चावल, हाथ का पिसा आटा और ग्रामोद्योगी वस्तुओं का ही उपयोग वह करते हैं। उन्होंने कहा कि खाने में व्रत-नियम तो होना ही चाहिए, क्योंकि भोजन और जीवन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। यदि भोजन शुद्ध नहीं रहा तो जीवन भी शुद्ध रहना संभव नहीं। इसी तरह के विविध विचारों का भोजन मुझे गाड़ी में मिला। मेरा दिमाग़ और मेरा हृदय दोनों ही इन विचारों में उलझे रहे कि भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनों के मार्ग कितने भिन्न हैं! किसे सत्य कहें और किसे मिथ्या!

गोमो से चांदील आते समय विचारों में यह उलझन न थी। शायद इसका कारण मेरा एकान्त था। डिब्बे में मैं अकेली थी और प्रकृति ने बरबस मुझे अपने ओर खींच लिया था। पहाड़ी प्रदेश और आदिवासियों की बस्ती ने मेरे सामने एक अभिनव सौंदर्य उपस्थित कर दिया था। गाड़ी की तेज रफ्तार से रास्ता तेजी से कट गया और मैं चांदील पहुंच गई।

गांव में अक्सर तार देर से पहुंच पाते हैं, इसलिए स्टेशन पर किसीको न पाकर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। जब बाबा के पास पहुंची तो उन्हें जरूर आश्चर्य हुआ और वह तुरन्त बोले—

"अरे, तू यहां कैसे आ गई? परसों ही मैंने तेरा स्मरण किया और मेरे स्मरण ने तुझे बुला लिया।" फिर मेरे कुशल-समाचार पूछकर कहा, "मैं आज लिखने ही वाला था। श्रीमन् (श्री श्रीमन्नारायण) का पत्र आया था, मैं उसीसे तेरा पता पूछने वाला था। बुद्धि के भी बहुत समय से समाचार नहीं मिले थे। दिल्ली में ही तो उससे मिला था न! पंद्रह-सोलह महीने से भी अधिक हो

गये शायद ! इसीलिए इच्छा हुई थी कि लिखकर समाचार पूछूं ।"

बाबा इस तरह कुशल-समाचार पूछकर और थोड़ी बातें करके अपने काम में लग गये, लेकिन आत्मीय भाव से सराबोर उनका यह वाक्य मेरे हृदय में गूंजता रहा—"मेरे स्मरण ने तुझे यहां बुला लिया।" वास्तव में इसीमें भगवान की प्रेरणा के सत्य रहस्य का दर्शन है। महादेवी ताई ने इसकी पुष्टि यों कहकर की—"तेरी श्रद्धा थी और तुझे यह मौका मिल गया।"

आज पहला ही दिन है। मैंने अपना सामान जमाया और पुस्तकें, कागज इत्यादि ठीक किये और सोचती रही कि देखूं, वह मुझे क्या व कैसा काम देते हैं। बाबा सारा काम 'लोकनागरी' में करते हैं। यह देवनागरी का ही थोड़ा संशोधित रूप है। केवल सुविधा की दृष्टि से बाबा ने इसमें कुछ परिवर्तन किये हैं, अन्यथा उसे पढ़ने या समझने में कोई कठिनाई नहीं होती।

बाबा का स्वास्थ्य पहले से कुछ अच्छा है, यह कहना चाहिए, पर हैं बहुत ही कमजोर। इतनी कमज़ोरी में भी कितनी स्फूर्ति और आत्मबल है ! सचमुच उनके दर्शन-मात्र से ही कितनी प्रेरणा व कितना सुख प्राप्त होता है ! मेरा सौभाग्य है कि मुझे उनके सान्निध्य में रहने का यह सुयोग मिल रहा है।

रविवार; ८ फरवरी '५३

: २ :

सूक्ष्म निरीक्षण

बाबा नें आज से घूमना आरंभ किया है । डाक्टर ने बताया है कि चलते समय बाबा को बिल्कुल नहीं बोलना चाहिए और बाबा जब चलते हैं तो उनके साथ उनकी वाणी से ज्ञानगंगा बहना शुरू हो जाती है । विनोबा को देखकर कोई भी यही सोचता है कि वह बहुत ही गंभीर और रूखे स्वभाव के हैं; पर बाबा बड़े विनोदी हैं । उनका विनोद बड़े ऊंचे स्तर का होता है, जिसमें बालक की सरलता और ऋषि की गंभीरता व ज्ञान का अद्भुत मेल है । आज जब महादेवी ताई ने बाबा से कहा कि आपको चलते समय बोलना नहीं है, तो बाबा ने उत्तर दिया, "तब तो मैं अकेला ही घूमने जाऊंगा । न कोई साथ होगा, न बातें होंगी ।" पर बाबा के स्वास्थ्य और उनकी कमज़ोरी को देखते हुए ऐसा किया नहीं जा सकता था । मैंने कहा, "यह तो नहीं हो सकता कि आप अकेले जायं । पर हम आपसे नहीं बोलेंगे और आप भी बातें मत कीजिये । आप यही समझिये कि आपके साथ कोई नहीं है ।" बाबा यह सुनकर मौन रह गये । अतः मैंने समझा—"मौनं सम्मति-लक्षणम् ।"

६। बजे हम लोग घूमने निकल गये । कुछ-कुछ उजाला हो गया था और अन्तर में भी उजाला खिलता जा रहा था । आज हम तीन मील चले । स्वागत-समिति के मंत्री श्री रामविलास शर्मा साथ थे । अन्य एक-दो और भाई थे । सब मौन चल रहे थे । एक स्थान पर शर्माजी ने बाबा से लौटने को कहा तो वह बोले,

"महादेवी ने बोलने को मना कर दिया था तो मैंने चिन्तन शुरू कर दिया। मुझे पता ही न चला कि हम कितनी दूर आ गये।"

फिर शर्माजी से बोले, "विवेक-चूड़ामणि से मैंने तीन सौ श्लोक चुनकर ज्ञान को टाइप कराने दिये हैं।" शंकराचार्य पर बाबा ने कुछ देर व्याख्या की और फिर 'गीता-प्रवचन' के अनुवाद की चर्चा की। 'विवेक-चूड़ामणि' शंकराचार्य की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। उसमें से श्लोकों को चुनकर बाबा उसकी एक पुस्तक बना रहे हैं। उसीको व्यवस्थित रूप देकर टाइप करने को मुझे कहा है। उन्होंने काम सौंपते हुए कहा—"तुम्हारी कला भी देखूं!"

बाबा का हर बात में बड़ा सूक्ष्म निरीक्षण होता है। यहां तक कि उठने-बैठनेऔ र बातचीत के ढंग के साथ-साथ छोटे-से लेकर बड़े काम को वह बड़ी पैनी निगाह से देखते और उसका निरीक्षण करते हैं। उनके डेस्क पर यदि कलम ज़रा भी टेढ़ी रक्खी हो तो वह उनके दिमाग को परेशान करती है। बाबा के इस स्वभाव से मैं कुछ परिचित थी। दरबारजी से उनकी जीवन-दृष्टि के सम्बन्ध में काफी सुन चुकी हूं, अतः उनकी इन बातों से मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। फिर उनके स्नेह का अधिकार भी साथ में है, अतः कोई भय नहीं है। असल में बाबा के सान्निध्य में रहते हुए मैं जिस आनन्द का अनुभव करती हूं, उसे वाणी या लेखनी द्वारा व्यक्त करना मेरे लिए कठिन है। एक अलौकिक आनन्द की प्राप्ति से मुझे आत्मतृप्ति-सी अनुभव होती है। संत के सान्निध्य के प्रभाव के विषय में पढ़ा और सुना बहुत था, लेकिन प्रत्यक्ष अनुभव और आनन्द तो अभी मिल रहा है।

सोमवार; ९ फरवरी '५३

: ३ :

युगानुरूप यज्ञ

यहां आये अभी दो ही दिन हुए हैं, किन्तु ऐसा अनुभव होता है जैसे मैं यहां बहुत दिनों से हूं। यहां की दिनचर्या और कार्य में पता भी नहीं चलता कि समय कैसे बीत जाता है। विस्तार से डायरी लिखने का समय भी मैं नहीं निकाल पाती हूं। चाहती हूं कि रोज बाबा के विचार लिख लिया करूं। आज संध्या को बाबा प्रार्थना के बाद कुछ बोले। उनका स्वर बहुत धीमा था। आज संध्या को वह आधे घंटे के लिए घूमने भी गये। सुबह तो वह साढ़े तीन मील से भी अधिक घूमे। संध्या के समय बाबा ने जो विचार व्यक्त किये, वे इस प्रकार हैं—

स्थायी काम चले

"सर्वोदय-सम्मेलन यहां हो रहा है और मेरा भी तीन महीने यहां निवास हो जायगा। सम्मेलन के बाद अगर ईश्वर ने चाहा तो मैं आगे बढ़ना चाहता हूं। सम्मेलन के बाद और मेरे जाने के पीछे अगर यहां कुछ काम बाकी नहीं रहा, तो यह कहना चाहिए कि जो कुछ हमें कमाना चाहिए वह नहीं कमाया। इसलिए हमें यह सोचना है कि यहां के लोग इकट्ठे हो जायं—थोड़े अच्छे लोग, महाजन और सज्जन—और आपस में सलाह-मशविरा करके कुछ स्थायी काम यहां चले, ऐसा इंतजाम करें। उसके इंतजाम के लिए कुछ चाहिए—कुछ जगह चाहिए, और संपत्ति-दान यज्ञ में योग दें तो यहां कुछ काम हो सकता है। यहां लोगों में सद्-भावना है, दान की वृत्ति है, धर्मनिष्ठा भी है।

बुद्धि और भावना का समन्वय करें

"आज मैं थोड़ा घूमकर आया तो देखा कि गांव में एक नया मन्दिर बनाया गया है। वह देखकर मुझे कुछ खुशी हुई और कुछ ठीक भी नहीं लगा। खुशी इसलिए हुई कि लोगों में केवल स्वार्थ-बुद्धि से भिन्न और भी कुछ बातें हैं; लेकिन ठीक इसलिए नहीं लगा कि आज इस जमाने में नये-नये मन्दिर बनाये जायं, इससे मेरी धर्म-भावना तृप्त नहीं होती। एक जमाना था जब लोग खुशहाल थे और उद्योग-धंधे खूब चलते थे। परदेश के लोगों तक में यहां के उद्योगों की कीर्ति फैली थी। देश की संपत्ति देश में ही रहती थी। तब भगवान् के लिए लोगों ने मन्दिर बनाये; पर आज जब कि लोगों में गरीबी और दुःख फैला हुआ है—गरीबों को जितनी मदद पहुंचायें उतना कम ही है—इस जमाने में नये-नये मन्दिर बनाना जंचता नहीं। इससे धर्म की वृद्धि होती है, ऐसा नहीं लगता। हां, बनानेवालों की भावना अच्छी है, पर भावना के साथ बुद्धि भी होनी चाहिए। अभी हमने गाया—'नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना'—बुद्धि के साथ भावना होती है, लेकिन बिना बुद्धि के भावना काम नहीं करती। अपने सांसारिक जीवन के लिए जो पैसा खर्च करते हैं, उसे बचाकर पारमार्थिक काम में खर्च करने की भावना अच्छी है; पर किस जमाने में कौन-सा पारमार्थिक काम अच्छा है, यह सोचने की बात है। जिस जमाने में जंगल-ही-जंगल थे, उस जमाने में लकड़ी काटने की जरूरत थी तो लकड़ी को जलाने का काम सिखाया और उसे यज्ञ का रूप दिया। तो अब पेड़ लगाने हैं!

युगानुरूप यज्ञ

"जमाना बदला तो यज्ञ का स्वरूप भी बदलता है। इस जमाने

में गरीबों को राहत देना, मदद देना; उनको उतने ही हक देना, जितने हमारे लिए हैं, उनकी सेवा के लिए भूदान देना, यही परमेश्वर की उत्तम सेवा हो सकती है। पत्थर की मूर्ति में भगवान होते हैं; लेकिन उनका प्रकट रूप अगर कहीं है तो वह प्राणियों में है। उसके विशेष स्वच्छ दर्शन के लिए मंदिर अवश्य बनावें। पर वे मन्दिर विद्या-मन्दिर के रूप में स्थापित होने चाहिए। भगवान् की पूजा का तरीका जनता की दशा को देखकर होना चाहिए। जहां लोग भूखे और प्यासे पड़े हैं, वहां पत्थर की मूर्ति की पूजा ठीक नहीं। हम में जो दानबुद्धि और धर्मबुद्धि है, वह सब गरीबों के काम में आये—यह हमारा, आपका और जनता के सोचने का काम है। हरिजनों-आदिवासियों की सेवा किस प्रकार हो, दूसरे भी जो पिछड़े हुए लोग हैं, गरीब हैं, अशिक्षित हैं, उनकी भी सेवा कैसे हो, यह हम सबके विचार करने की बात है।

सेवा ही उद्देश्य

"इस काम के लिए आपके प्रदेश के राज्यपाल ने मुझे अपनी तनख्वाह में से कुछ रकम देने का विचार किया है। उनकी इच्छा है कि मैं हरिजनों और आदिवासियों के काम के लिए उसका उपयोग करूं। मगर इस तरह बाहर के पैसों से तो यहां काम शुरू नहीं किया जा सकता और न करना चाहिए। यहां के लोग अगर इंतज़ाम करें तो बाहर से भी जो थोड़ी मदद मिलती है, उसका उपयोग हो सकता है। मैं चाहता हूं कि आप लोग इसपर सोचें। यहां सर्वोदय-समाज भी मैं कायम करना चाहता हूं। राज्य की किसी पार्टी का सम्बन्ध उससे नहीं होगा, कोई दूसरा उद्देश्य भी उसका नहीं होगा। लोगों की सेवा करना ही उसका उद्देश्य होगा। शारीरिक परिश्रम करना और प्रमाद न करना आदि मुख्य बातें

सर्वोदय-समाज में हैं।

कुछ पुरानी यादें

रात को थोड़ी देर बाबा के पास बैठी तो बाबा अपने भूतकाल की बातें सुनाने लगे। मुझे उनकी बातें प्रिय लगती हैं, क्योंकि वे स्नेहपूरित होती हैं। मैं कुछ पूछना चाहती हूं, किन्तु प्रश्न मन में उठा नहीं कि बाबा मानो उसे समझ जाते हैं और उसका उत्तर दे देते हैं। मुझसे बाबा ने पूछा, "तुम बड़ौदा रही हो न ?" बचपन के मेरे दस वर्ष बड़ौदा में ही बीते हैं। बाबा भी जब दस वर्ष के थे तब बड़ौदा गये थे। अतः हम दोनों का ही बड़ौदा के प्रति सहज ममत्व है। बाबा को तो जिस विद्यालय में मैं पढ़ी हूं उसकी भी याद है। रास्ता तक उन्होंने बताया, "स्टेशन जाते समय पुल के बाईं ओर उसके लिए रास्ता है न ? मैं दस साल का वहां गया था, बीसवें साल में निकला। वहां से काशी गया और फिर साबरमती, बापू के पास।" बापू की याद करके बाबा कुछ गंभीर और क्षण-भर मौन हो गये। फिर बोले,—"वहां से वर्धा गया। वहां हमारा आश्रम पहले बजाजवाड़ी में था, फिर महिलाश्रम में। 'बुद्धि' मेरे पास महिलाश्रम में आया। यह सन् १९२८ की बात है। और तबसे १९४२ तक वह बराबर मेरे पास रहा।" फिर मेरे बारे में पूछने लगे, "तू बड़ौदा में कितने साल रही ? गुजराती आती है, न ? बोल लेती है न ? शायद तूने कुछ संस्कृत भी सीखी थी ?"

इन बातों से पहले बाबा श्लोक पढ़कर सुना रहे थे और मराठी में समझाते जाते थे। महादेवी ताई वहीं बैठी हुई थीं। जब पुस्तक बन्द कर दी तो मुझसे पूछा, "मराठी समझ लेती है या भूल गई ? कितने वर्ष दिल्ली में रही ?"

वर्धा में रहने के कारण मराठी का ज्ञान मैं प्राप्त कर सकी थी, पर बाबा को लगा कि दिल्ली में रहने के कारण शायद मराठी भूल गई होऊं। मैंने उनसे कहा कि गुजरात में मैं दस साल रही और वर्धा में पांच साल, दिल्ली में तो अभी तीन साल भी नहीं हुए अतः गुजराती और मराठी दोनों ही मेरे साथ हैं। पुस्तकें भी पढ़ती रहती हूं, जिससे भाषा का ज्ञान बना रहता है। यों दिल्ली में गुजराती और मराठी बोलने का अवसर कम ही आता है। हां, बाबूजी (राजेंद्रबाबू) के पास जो गुजराती, मराठी या संस्कृत के पत्र आते हैं, उनका अनुवाद कर देती हूं। इससे भाषा का सहज अभ्यास हो जाता है। यह सुन बाबा बोले—"यह तो बड़ी अच्छी बात है।"

महादेवी ताई बाबा की सोने की तैयारी करने उठीं। मैं भी अपने कमरे में आ गई। थोड़ी थकी थी, पर मुझे ध्यान आया कि बाबा तो जैसे थकने का नाम नहीं लेते। सुबह तीन बजे उठते हैं, चार बजे सामूहिक प्रार्थना और कताई में हिस्सा लेते हैं, फिर घूमने जाते हैं। सात-साढ़े सात तक वापस आकर स्नान करते हैं और पुनः अध्ययन में लग जाते हैं। दर्शन के लिए आये कुछ लोगों से बातें भी करते हैं। ११ बजे थोड़ा आराम करते हैं और फिर उठकर पत्र-व्यवहार इत्यादि देखते हैं। दोपहर को शंकराचार्य की पुस्तक का अध्ययन और मुलाकातें। संध्या को प्रार्थना और घूमना। रात्रि को कुछ देर चिन्तन तथा अध्ययन। ९ बजे के क़रीब बाबा सो जाते हैं। यही संक्षेप में उनकी दिनचर्या है। उनका जीवन सादा ही नहीं, बड़ा परिश्रमी भी है। बाबा के तपःपूत चरणों में प्रणाम करके मैं भी सोती हूं।

मंगलवार; १० फरवरी '५३

: ४ :

काकाजी का स्मरण

आज राजू की बीमारी की खबर पाकर मेरा मन खिन्न रहा। कहीं एक कर्त्तव्य की पूर्ति में दूसरे कर्त्तव्य की ओर से विमुखता तो नहीं या एक की पूर्ति में ही दूसरे की भी इतिपूर्ति है ! मैं बार-बार यही सोचती रही।

लक्ष्मीबाबू कलकत्ता से आ गये हैं। उनका निकट से परिचय पाकर बड़ी खुशी हुई। सरल और साधु-स्वभाव के कारण उनके प्रति मेरी सहज श्रद्धा हो गई है।

बाबा का वात्सल्य

मेरे काम के सम्बन्ध में बातें हो रही थीं तब बाबा ने विनोद में कहा, "हमारा पत्र-व्यवहार तो 'लोकनागरी' में चलता है और यह तो जानती है 'नागरी'।" फिर कहने लगे, दस-पंद्रह दिन रख-कर भेज देंगे। लक्ष्मीबाबू के यह कहने पर कि फिर तो सम्मेलन के पांच-सात रोज ही रह जायंगे, बाबा बोले, "लेकिन यह बाल-बच्चों को छोड़कर आई है न ?" यह सुनकर मैंने बाबा से कहा, "नहीं, मैं सम्मेलन तक रहने की तैयारी से आई हूं।" बाबा को मैंने उत्तर तो दे दिया; पर मैं मन-ही-मन सोचती रही कि बाबा को तो मुझसे भी अधिक बच्चों की चिन्ता है। तपस्वी विनोबा में भी बाबा के हृदय की कैसी मीठी ममता है !

आज सुबह बाबा ७६॥ मिनिट में चार मील एक फर्लांग चले। बाबा १८ मिनिट में एक मील की अपनी पुरानी रफ्तार को पकड़ रहे हैं। भ्रमण के समय अधिकतर मौन ही रहे। इस भ्रमण

में पहाड़ी प्रदेश के सरल सौंदर्य का सहज आकर्षण मन को भाता है और बाबा तो अपने मौन-चिन्तन के साथ इस सौंदर्य-सृष्टि को शायद आत्मसात् ही करते जाते हैं।

रात बाबा बाहर सोये। मैंने उनसे कहा, "आपकी गणना अभी रोगियों में है," तो हँस पड़े और सोते-सोते कहने लगे, "आज जमनालालजी का दिन है, यह रूपान्तर अच्छा है!" बाबा अपनी धुन के पक्के हैं। पर सोते समय जब उन्होंने काकाजी का स्मरण किया तो मेरा ध्यान भी काकाजी की स्मृति में रम गया। मेरे हृदय में सदा इस बात की कसक रह गई कि काश, मैं काकाजी के रहते हुए ही उनके परिवार में प्रवेश कर पाती और उनका आशीर्वाद पा सकती! आज बाबा के स्मरण के साथ मैंने भी उनके प्रति अपनी दो अश्रुओं की श्रद्धांजलि भेंट की। स्वर्ग से भी उनका आशीर्वाद मुझे सत्पथ पर आगे बढ़ाये, यही मेरी भावना और प्रार्थना है।

बुधवार; ११ फरवरी '५३



: ५ :

'छोटी दिल्ली' में

जमशेदपुर में

आज सुबह लक्ष्मीबाबू के साथ जमशेदपुर गई। टाटा कम्पनी में रिसर्च-विभाग के अधिकारी श्री मणीन्द्र घोष के साथ हम लोग कंपनी के डायरेक्टर-जनरल श्री जहांगीर गांधी से मिलने गये। लक्ष्मीबाबू को सर्वोदय-सम्मेलन में पानी की व्यवस्था के लिए उनसे मिलना था। उन्होंने बहुत अच्छी तरह बातें कीं और विनोबा के सम्बन्ध में बड़ी जिज्ञासा से प्रश्न पूछे। कहते थे कि "अभी तक तो विनोबा भावे का नाम कभी सुना नहीं था, क्या वह गांधीजी के फौलोअर हैं ?"

श्री मणीन्द्र घोष से परिचय

श्री मणीन्द्र घोष से परिचय पाकर खुशी हुई। उन्होंने हाल ही में एक नई खोज की है। वह है, सूर्य की किरणों से खाना पकाने-वाला कुकर। प्रयोग के लिए यह उन्होंने विनोबा के पास भेजा है। यह मोटे-मोटे शीशों से बना है और इसके चारों ओर लकड़ी है। अन्दर दाल-सब्जी बर्तन में रख देते हैं और ढक्कन बन्द कर देते हैं। कांच सूर्य की किरणों को खींचता है। उनका संग्रह करता है और उसी गर्मी से खाना पकता है। आकार में यह काफी बड़ा और भारी है।

जमशेदपुर में एक सर्वोदय-मेला भी हो रहा था। वहां भी हम गये। वहीं पर वासन्तीबहन और सुबोधभाई से भेंट हुई। दोनों ही आजकल सर्वोदय के काम में लगे हैं। उनका आश्रम यहां

से चार-पांच मील दूर नीमनी गांव में है। उन्होंने मुझे वहां आने का निमंत्रण दिया। अवसर मिला तो वहां जाने का विचार है।

छोटी दिल्ली

जमशेदपुर मैंने पहली बार देखा है। जैसे ही हम लोगों ने इस शहर में प्रवेश किया, लक्ष्मीबाबू बोले, "यह हम छोटी दिल्ली में आ गये।" दिल्ली के जैसा ही यह सुन्दर और शानदार शहर है, यद्यपि दिल्ली से छोटा है। एक बात में भिन्नता अवश्य है। दूर से ही यहां के कारखानों की धुंएदार चिमनियां और ऊंची दीवारें दीख पड़ती हैं। शहर के बीच एक सुन्दर सरोवर भी है, जो दिल्ली में नहीं। सारे शहर की रचना बड़ी अच्छी है।

जमशेदपुर से हम लोग जब लौट रहे थे तो लक्ष्मीबाबू ने ग्रामोद्योग को दृष्टि में रखते हुए कहा, "हम तो चाहते हैं, यह कारखाने इत्यादि बन्द हो जायं तो अच्छा।" मैंने कहा, "लेकिन रेल के बिना आवागमन की असुविधा तो बहुत होगी।" तब कहने लगे, "समाज को आज सुविधा नहीं, शान्ति चाहिए।" इन बातों से उनकी खादी और ग्रामोद्योग के प्रति निष्ठा पग-पग पर व्यक्त होती है। मोटर में बैठे हुए भी कह रहे थे कि "पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं" और "स्वाधीन वृत्ति ही खादी है।"

गांधीजी 'बापू', विनोबा 'बाबा'

रास्ते में हमने वह स्कूल देखा, जहां अपनी पद-यात्रा में विनोबा ठहरे थे और वहां से बुखार में ही पैदल चलकर गांव तक आये थे। और १०३° बुखार में भी वहां से चांदील तक चलने को कमर कसे हुए थे, पर साथी यात्रियों ने बहुत आग्रह किया। इस आग्रह को वह मान तो गये पर उनका आग्रह हुआ बैलगाड़ी के लिए। अच्छी-से-अच्छी मोटर उनके लिए सुलभ थी, पर यहां

भी अपनी धुन और सिद्धान्त पर अड़ जाना ही उन्होंने पसन्द किया। लक्ष्मीबाबू ने बताया कि यहां बैलगाड़ी के बजाय मोटर मिलना ज्यादा आसान था। बैलगाड़ी को प्राप्त करने में पूरे पांच घंटे लगे तब कहीं जाकर समस्या हल हुई और तब विनोबा ने बुखार में ही चांदील की ओर प्रस्थान किया। १५ दिसम्बर को वह बुखार के साथ चांदील आये। यहां आकर उनकी तबियत और खराब हो गई और उन्हें यमराज से काफी कुश्ती लड़नी पड़ी। भगवान् ने सबकी प्रार्थना सुन ली और बाबा को देश-सेवा के लिए छोड़ दिया। यहां सब लोग विनोबा को 'बाबा' कहते हैं। इसलिए इस माने में विनोबा गांधीजी से दो कदम आगे ही हैं—गांधीजी 'बापू' थे, विनोबा 'बाबा' बने हैं।

१२ दिसम्बर को बुखार ने बाबा का पीछा किया था, जो २१ दिसम्बर तक उन्हें सताता रहा और आखिर दवा के डंडे से ही भागा। उस पड़ाव को देखकर, जिस कुटिया में विनोबा ने विश्राम किया था, मुझे उनकी इस बीमारी का इतिहास याद आ गया। जंगल और पहाड़ियों के बीच वह कुटिया इस महासंत की पुण्यस्मृति को लिये एकाकी-सी खड़ी है, जिसकी गोद में परिश्रान्त बाबा ने दो क्षण विश्राम किया था और जिसकी चरणधूलि से यह पावन बनी है। इन पावन स्मृतियों को मुझे भी बटोर लेने की चाह हुई। सेवा और कर्त्तव्य के लिए बाबा कठिनाइयों से ही नहीं, यमराज से जूझने में भी पीछे नहीं रहते।

गुरुवार; १२ फरवरी '५३

: ६ :

'थोड़ी पूंजीवाले व्यापारी'

सुबह के समय अब बाबा करीब पांच मील चल लेते हैं। उनका विचार तो धीरे-धीरे दस मील तक पहुंच जाने का है, किन्तु डाक्टर मना करते हैं। आज घूमते समय बाबा ने कहा कि "अब दस मील तक बढ़ा देना है।" तो कृष्णदासभाई गांधी बोले, "पर फिर वजन का क्या होगा ?" बाबा ने उत्तर दिया, "हां, अभी ८८॥ तक तो पहुंच गया हूं। यात्रा आरंभ करने से पहले ९२ तक हो जाय तो बस है। काशी से ९० लेकर निकला था और बीमारी में तो ८० से भी नीचे चला गया था। इसलिए इतना मिल जाय तो मुझे संतोष होगा। हम तो थोड़ी पूंजी में काम चलानेवाले व्यापारी हैं।"

गांधीजी, चरखा और खादी

इस विनोद के बाद कृष्णदासभाई से चरखा और खादी के सम्बन्ध में चर्चा होती रही। एकंबरनाथ के अम्बर चरखे के प्रयोग के लिए विनोबा ने स्वीकृति दी। खादी-बोर्ड ने जो पांच लाख रुपये की ग्रांट चरखा-संघ को दी है, जिससे ग्राहकों को प्रति रुपये पर तीन आना कमीशन मिलेगा, इस सम्बन्ध में भी चर्चा हुई। इसी अवसर पर राजेन्द्रबाबू ने एक संदेश भेजा था, जिसके बारे में विनोबा बोले, "राजेन्द्र बाबू का संदेश पूर्ण भावनायुक्त था, लेकिन जवाहरलालजी ने जो कहा है वह भी मैंने पढ़ा है। वह कुछ और तरीके से सोचते हैं। गांधीजी थे, तब भी वह इसी तरह सोचते थे कि देहातों में मिलें होंगी, याने देहाती

मिलें हों इस तरह का उनका विचार दीखता है।" फिर सरकार की इस पांच लाख की मदद के विषय में बाबा कहने लगे, "इसमें गांधीजी का स्मरण है, इसीलिए सरकार ने इतना किया। कल कम्युनिस्ट आवें भी तो खादी को प्रोत्साहन नहीं देने वाले हैं। यह तो जो कुछ कराया है, गांधीजी के स्मरण ने ही कराया है।" इस तरह सारे रास्ते में गांधीजी, चरखा और खादी के विषय में ही बातें होती रहीं।

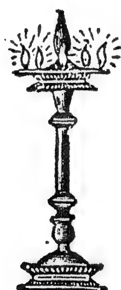
खुराक की चर्चा

आज संध्या को प्रभाकरजी ने बाबा के पाखाने की जांच की रिपोर्ट दी। उसका विश्लेषण बाबा ने देखा और कहा कि जिसका रंग सूखा और हरा है, वह तो समझना चाहिए कि कल का है, क्योंकि जो दवा कल ली थी, उसका हरा रंग था। पतला और सफेद दस्त बताता है कि कुछ गड़बड़ है। इसी बात से खुराक की चर्चा चली और बाबा बोले, "डाक्टर तो कैलोरी और बढ़ाने को कहता है, पर अभी तो इतना ही हज़म नहीं होता।" तभी बापू की खुराक के सम्बन्ध में हँसते-हँसते बाबा कहने लगे, "बापू ने तो एक बार २२८६ कैलोरीज एक साथ ली थीं। मैं तो विश्वास भी न करता, पर बापू ने स्वयं अपने हाथ से लिखा है, यह देखकर ही विश्वास हुआ।" फिर प्रभाकरजी से कहा, "बापू की डायरी लाना, ज़रा इसे भी दिखायें।" प्रभाकरजी बापू की डायरी लाये और बाबा ने उसे मुझे और महादेवी ताई को दिखाया। उसमें सब चीजों का विश्लेषण था। डाक्टर ने जो भी कुछ सुझाया था, बापू ने तदनुसार मानकर पूरी खुराक ली थी और उसके नीचे लिख दिया था, "कुल २२८६ कैलोरी लीं।" विनोबा यह देखते-देखते और पढ़ते-पढ़ते भी हँसते जाते थे। यहां तो बाबा ने

१४०० कैलोरी से शुरू किया और अब १८०० कैलोरी पर पहुंचे हैं। प्रभाकरजी ने बताया, "बापू तो खाने के बाद रस यूं ही पी लेते थे, उसकी गिनती वह नहीं करते थे।" पर विनोबा तो इसकी ही नहीं, रस में मिले पानी को भी तोलते हैं। विनोबाजी तो कहते ही हैं कि "विनोबा दुनिया से अलग है, भैया!"

अब बाबा सोने की तैयारी में हैं। इधर मैं अपने लिखने के काम में लगी रही। करीब ११ बजे सोई।

शुक्रवार; १३ फरवरी '५३



: ७ :

पक्ष-निरपेक्ष दृष्टि

आज बाबा पांच मील एक फर्लांग घूमे। जाते समय वह मौन-चिन्तन में रहते हैं। चिन्तन में बहुत मग्न रहते हुए भी उनकी गति होती है तीर के जैसी। कहीं-कहीं जहां रेल की पटरी पार करनी होती है और सामने दरवाजा बन्द होता है, उसका भी उन्हें पता नहीं चलता। सीधे-ही-सीधे चिन्तन-मग्न वह चले चलते हैं। हम लोगों को उनका ध्यान भंग करके रास्ता दिखाना पड़ता है, तब वह दो कदम पीछे लौटकर बाजू का रास्ता पकड़ते हैं। लौटते समय वह चर्चा और बातें करते हैं।

पार्टी-पॉलिटिक्स का प्रश्न

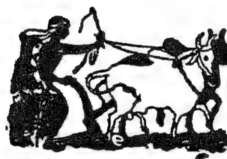
आजकल कृष्णदासभाई आये हुए हैं, इसलिए उनसे खादी के सम्बन्ध में ही अधिकतर बातें होती हैं। आज लक्ष्मीबाबू भी साथ थे। खादी-बोर्ड और सरकार की सहायता के अलावा भूदान के कार्यादि के सम्बन्ध में भी चर्चा हुई। पार्टी-पॉलिटिक्स का प्रश्न भी सामने आया। इसी सिलसिले में कल रात पुरुलिया के डिप्टी-कमिश्नर का तार आया था—"....एक वकील हैं, वह बहुत डिस्टरबैंस पैदा कर रहे हैं और इसीलिए उन्हें श्रीबाबू[1] के कार्यक्रम तथा उनके आने की तारीख को आगे बढ़ा देना पड़ा है।" विनोबाजी से बीच-बचाव करने की प्रार्थना की थी। बाबा ने पूछा कि वह श्रीबाबू के पक्ष के हैं या अनुग्रहबाबू के ? लक्ष्मीबाबू

---

[1]. स्व० श्रीकृष्ण सिन्हा (बिहार के तत्कालीन मुख्य मंत्री)

ने बताया कि "शायद अनुग्रहबाबू के ही पक्ष के हैं।" बाबा ने कहा, "हमें इसमें कुछ नहीं करना है। हम कर भी क्या सकते हैं! हमारा चुप रहना ही अच्छा है।" पार्टी आदि के सम्बन्ध में भी वह कहते रहे कि "हमें तो सबकी मदद लेनी है और सभी को सहायता देनी भी है। जयप्रकाशनारायण हमारा काम कर रहे हैं। चाहे कोई भी शिकायत करें तो भी हम उन्हें सहायता देंगे। कांग्रेस भी उन्हें बुला रही है।" इससे विनोबा का सर्व-समभाव स्पष्ट होता है। उनके जीवन में सर्वधर्म-समानत्व, स्वदेशी और स्पर्श-भावना का प्रत्यक्ष उदाहरण हमें मिलता है। जो पुस्तक से नहीं सीख सकते, वह उनके नित्य जीवन और विचारों से सीख सकते हैं।

शनिवार; १४ फरवरी '५३



: ८ :

ग्राम-राज्य की चर्चा

साल-भर काम, एक बार प्रदर्शन

आज भी घूमते समय कृष्णदासभाई ने चरखे के नये प्रयोग और उसके प्रदर्शन के सम्बन्ध में विनोबा से चर्चा की। उन्होंने कहा, "हैदराबाद में हमने इसका प्रदर्शन किया, पर उसमें हमारा समय और शक्ति बहुत खर्च होती है।" बाबा ने अपने विचार रखे और राय दी कि "यह ठीक है। मेरा तो विचार है कि हम साल में एक दफा ही अपने प्रयोगों का प्रदर्शन किया करें। साल-भर काम करके एक बार ही अपनी अक्ल का प्रदर्शन करना ठीक होगा। हैदराबाद में कांग्रेस ने बुलाया, हम गये। कल सोशलिस्ट एक सम्मेलन करेंगे और हमें बुलायेंगे तो उन्हें भी हम इनकार नहीं कह सकते, कल फिर और कोई बुलायेगा तो जाना होगा। इसीमें हमारा सारा समय और शक्ति खर्च हो जायेगी और काम कुछ हो नहीं पायेगा। इसलिए मेरे विचार से तो यही ठीक है कि केवल सर्वोदय-सम्मेलन में ही प्रदर्शन करें और वहां आकर लोग उसे देखें, या फिर सेवाग्राम में एक ऐसा प्रदर्शन स्थायी खुला रहे, जहां नये-से-नये प्रयोगों की प्रदर्शनी होती रहे और जिन्हें देखना हो वे वहां जाकर देखें।"

खादी और ग्राम-राज्य

खादी की बिक्री कम क्यों होने लगी ? लोग अब खादी पहनने में इतने दृढ़ क्यों नहीं हैं ? इन प्रश्नों पर विचार करते हुए बाबा ने बताया कि जवाहरलालजी का यह कहना कि खादी का

'पोलीटिकल स्कोप' ख़त्म हो गया, अब केवल आर्थिक दृष्टि से ही उसे हल करना है या अपनाना है, यह मेरे ख़याल से ग़लत है। पहले जो खादी में स्वराज्य का विचार था वह काल्पनिक था। अब तो खादी में ग्राम-राज्य का विचार है और वह सत्य है। ग्राम-राज्य होना तो अभी बाकी है और इसलिए खादी में राजनैतिक और आर्थिक दोनों ही मकसद, दृष्टि या उद्देश्य अब भी निहित हैं। खादी और ग्रामोद्योग के बिना हमें ग्राम-राज्य हासिल नहीं होगा। जवाहरलालजी विकेन्द्रीकरण चाहते हैं, और ग्रामों में घर-घर छोटी मशीनें या कहें देहाती मिलें हों तो उनका विरोध नहीं है।"

एकाध दाग भी सहन नहीं

यही बातें करते-करते निवासस्थान आ गया। अन्दर प्रवेश करते ही उन्होंने बिछी हुई दरियों की रचना बदली हुई देखी और दरी पर पड़ा हुआ एक दाग भी देखा। वह उन्हें अच्छा नहीं लगा और उन्होंने दरी को हटा देने को कहा। महादेवी ताई ने कहा कि गांववालों ने अच्छी-से-अच्छी दरी दी है। जिंदगी-भर लोग इस्तेमाल करते हैं तो एकाध दाग पड़ ही जाता है। किन्तु विनोबा बोले, "पर मुझसे यह दाग सहन नहीं होता। इससे मेरे ध्यान में विघ्न पड़ता है। इतना ही नहीं, इसके बाद वह अपने डेस्क पर रखी हुई किताब को उठाकर और टेढ़ी करके रखते हुए बताने लगे कि "यदि यह किताब ऐसे रही तो भी मेरे ध्यान में बाधा पहुंचती है। यों तो लोगों की आंखें प्रार्थना के समय बन्द होती हैं और वे उन्हें सहन कर सकते हैं, पर आंखें बन्द होते हुए भी मेरे ध्यान में बाधा पड़ती है।" बाबा की सूक्ष्म दृष्टि का यह एक और उदाहरण है। सफाई और व्यवस्था, समय और

कार्य सभी में उनकी सूक्ष्म दृष्टि का दर्शन होता है। उनकी दृष्टि ही नहीं, कृति भी ठीक वैसी ही है।

कृष्णदासभाई आज वर्धा चले गये। लक्ष्मीबाबू दो-तीन दिन के लिए रांची गये हैं।

ता० २२ फरवरी को जवाहरलाल जी विनोबा से मिलने आयेंगे, इसकी सूचना बाबा को मिली। इससे उन्हें बड़ी खुशी हुई।

सर्वोदय-सम्मेलन की तैयारियां भी चल रही हैं। चांदील एक गांव है और पथरीला प्रदेश है, इसलिए तैयारी में पानी आदि की कठिनाई तो अवश्य होगी, पर उसके लिए प्रबन्ध किया जा रहा है। अभी पंडाल आदि बनना शुरू नहीं हुआ है, पर जंगल वगैरह साफ किया जा रहा है। धीरे-धीरे कार्यकर्त्ता भी आकर जुट रहे हैं। स्वास्थ्य की प्रगति के साथ-साथ बाबा का काम और उनकी व्यस्तता भी बढ़ती जा रही है।

रविवार; १५ फरवरी '५३



: ९ :

मदालसा दीदी का पत्र

आज पुरुलिया जिले के लोकसेवक संघ के कार्यकर्त्ता विनोबा से मिलने और उनकी सलाह तथा मार्गदर्शन के लिए आये। करीब ढाई घंटे बाबा से उनकी चर्चा हुई। इस तरह की चर्चा सुनने का मेरा यह पहला अवसर था। उन कार्यकर्त्ताओं ने बाबा के सामने दिल खोलकर अपने विचार रखे। चर्चा बड़ी लम्बी और कुछ खट्टी-मीठी थी। बाबा ने भी बड़े धैर्य से सब सुना। उन बातों का उल्लेख मैं यहां नहीं करना चाहती, क्योंकि बाबा ने पहले ही कह दिया था कि ये व्यक्तिगत बातें हैं, नोट करके रखना ठीक न होगा।

शान्ताबाई रानीवाला, माला आदि बहनें गया पहुंच गई हैं। इस तरह गया का कार्य उत्साह से शुरू हुआ है। विनोबा के संकल्प को पूरा जो करना है! मृदुला, दामोदरभाई, निर्मला आदि सभी गया में हैं ही। बाबा इन सबके द्वारा भेजे समाचारों को बड़ी उत्सुकता से सुनते हैं और वहां के कार्य की प्रगति के विषय में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं।

अनेक पत्रों के बीच आज मैंने मदालसा दीदी का पत्र पाया, उनका पत्र कहीं कागजों की ढेरी में ही न छिप जाय, इसलिए मैं उसे यहां ज्यों-का-त्यों उतार लेती हूं। वह लिखती हैं—

नई दिल्ली
१४–२–१९५३

मेरी भाग्यवान बहन,

तुम्हारा ता० ११ फरवरी का पत्र, पू० काकाजी की स्मृति से पूर्ण और परम पूज्य बाबा के सहज स्नेह और आशीर्वादों से पुनीत, पढ़कर, पाकर मेरा भी दिल भर आया और मुग्ध भी हुआ। बहन, अब तो मेरा दिल भी चांदील पहुंचने को उत्सुक हो उठा है। मैं न सही, पर तुम ही अपनी कार्य-प्रवीणता के द्वारा परम पूज्य बाबा के इस क्रांतिकारी यज्ञकर्म का अनुष्ठान देखने व अपना हविर्भाग अर्पित करने जा पहुंची हो, यही मेरे लिए बड़े सुख-संतोष की बात है और वहां पहुंचते ही भावभरा पत्र देकर तो तुमने मुझे अपने सुखानुभव से अधिक सम्बद्ध कर लिया है।

ता० ११, १२ को मुझे भी परम पूज्य बाबा की दिन-रात याद आती रही। ठीक साल-भर से बाबा के दर्शन तक नहीं कर पाई हूं। अब तो पांव भी ठीक संभल गया है, बहन उमा का इंतजार है। उसके आते ही रवाना होकर आ जाना चाहती हूं।

प्रिय महादेवी ताई को पत्र दिया था। उसीके उत्तर की प्रतीक्षा भी कर रही हूं। उमा, सम्भव है, २४ तक आ जायगी।

ज्ञान, तुम वहां उचित वक्त पर पहुंच गई हो और कार्य की व्यस्तता में भी मेरी याद कर लेती हो, इतना अनुसंधान ही इस वक्त मेरे लिए बड़े सुख की बात है। पूज्य पिताजी, माताजी के शुभाशीष। कुछ विशेष विचार और अनुभव, जो परम पूज्य बाबा से सुन पाओ, उन्हें विशेष हिफ़ाज़त से नोट करना।

सप्रेम शुभकामना सह, तुम्हारी दीदी,
मदालसा

यह पत्र जब भी पढ़ती हूं, मेरा हृदय भर आता है। भावना की इस एकता में भगवान् की कैसी अनुपम कृति और सत्य का दर्शन होता है !

अपने कार्य में मैं लगी हूं। मेरे कार्य की बुनियाद कितनी गहरी और मजबूत हो पायेगी, यह तो मैं नहीं जानती। पर हां, अपनी पूरी शक्ति तो इसके बनाने में लगा ही देनी है। कार्य की बुनियाद का यह आरम्भ है या बुनियाद के लिए विचारों का मसाला और प्रेरणा का जल मिल रहा है मुझे—या मैं अभी यह सब इकट्ठा कर रही हूं—? कुछ भी हो, जीवन की यात्रा के लिए यह मधुर पोषक पाथेय तो जरूर है। सुपथ की यात्रा तो बापू के आशीर्वाद से शुरू की थी, पूज्य किशोरलालभाई की प्रेरणा ने आगे बढ़ाया, राजेन्द्रबाबू के सौम्य वात्सल्य ने शीतल छाया का सहारा देकर ढाढ़स बंधाया और अब मिल रही है विनोबा से चेतनामय स्फूर्ति तथा अमृत-तत्त्व का सार। जीवन-विचार आगे बह चलते हैं, पग आगे बढ़ते हैं, कदमों में एक नई शक्ति का मानो संचार हो रहा है। हृदय में धीरज और साहस के लिए मंजिल की ओर आगे बढ़ने का मूक संदेश मिलता है। बाबा के चरणों में बैठने का ही तो यह प्रताप है। भगवान के चरणों में बैठकर भक्ति और शांति मिलती है, तो बाबा के चरणों में बैठकर शांति और क्रांति की गंगा-यमुना, जिसमें प्रेरणा स्वयं लुप्तधारा सरस्वती की तरह आ मिलती है।

सोमवार; १६ फरवरी '५३

: १० :

महिलाश्रम की बहनों को सीख

आज मालती ताई थत्ते 'महिलाश्रम, वर्धा' की ग्यारह महिलाओं के साथ विनोबा का आशीर्वाद लेने आई थीं। गया के भूदान-यज्ञ को सफल बनाने के लिए ये बहनें वर्धा से एक संकल्प करके निकली थीं। विनोबा जब घूमकर आये तब सब बहनों ने जाकर प्रणाम किया। हाथ जोड़कर प्रसन्नवदन नमस्कार करते हुए विनोबा बोले, "इस तरह हाथ जोड़ता हूं तो सबको नमस्कार हो जायेगा।" बाद में नाश्ता यानी संतरे का रस लेते हुए जितनी बातें हो सकती थीं कीं, कुशल-समाचार पूछे। चंदूभाई ने, जो यहां पत्र-व्यवहार तथा ऑफिस का कुछ कार्य-भार संभालते हैं, ताई को बताया था कि परसों ही विनोबा ने थत्तेजी को, जो महिलाश्रम के संचालक हैं, पत्र लिखा है कि यदि बहनों के अध्ययन में विघ्न होता हो तो वे न आवें, यहां के लोग कार्य कर ही रहे हैं। ताई ने इसी बारे में विनोबा को हँसते हुए कहा, "सुना है कि आपने एक पत्र वर्धा भेजा है; अच्छा हुआ आपका पत्र मिलने से पहले ही हम निकल पड़े नहीं तो आज्ञा-भंग करनी मुश्किल हो जाती।" विनोबा हँस पड़े और बोले, "अच्छा, ऐसी बात है? अच्छा हुआ, अब तुम आ ही गयी हो।" मराठी में ये बातें और भी मधुर लगती थीं। मालती ताई ने अपनी पुत्रवधू का परिचय कराते हुए कहा—"हे सुन् आहे (यह बहू है)।" विनोबा ने तुरन्त ही पूछा, "नवीन आहे न?" फिर उसका परिचय पाकर कि वहीं वर्धा के श्री अत्रे वकील

की लड़की है, बाबा ने विनोद किया, "अच्छा है, सुसराल और पीहर एक ही जगह है।" सब बहनों के चेहरे देखकर सब को पहचाना, केवल एक बहन का चेहरा नया था, वह नेपाल की थी। यही सब बातें हो रही थीं कि कताई की घंटी बजी और मुलाकात पूरी हुई।

दोपहर को दो बजे से ढाई बजे तक का समय बहनों को दिया था। तीन बजे बहनें गया की ओर जानेवाली थीं। विनोबा ने वात्सल्यमयी वाणी में बहनों को सीख देते हुए कहा :

जीवन में ही सच्ची शिक्षा

"तुम भूदान-यात्रा में जा रही हो। वहां तुम्हारा बैठना-उठना, व्यवहार आदि सब ऐसा होना चाहिए, जिससे लोगों को तुमसे कुछ सीखने को मिले और तुम्हें तो शिक्षण मिलेगा ही। विद्या केवल पुस्तकों में ही तो नहीं रहती, पर जो मुख्य विद्या हासिल करने की है वह जीवन में है। शाला का सिर्फ चार साल, छः साल, आठ साल का अध्ययन होगा, बाद में तो जीवन में ही अध्ययन करना होगा। शाला में काम करते हुए अगर अनुभवी लोगों के साथ में काम करने के ऐसे मौके बीच-बीच में मिलते हैं तो बहुत लाभ होता है। जो तालीम मिली है, उसकी भी कसौटी होती है और उसमें वृद्धि भी होती है। गया जिले में अब ऐसा वातावरण तैयार हो गया है। जिले के लोगों में उत्साह है। वे तुम्हारा स्वागत करेंगे। घर-घर में जाने का तुमको मौका मिलेगा। प्रचार का अच्छा कार्य वहां होगा, ऐसी लोगों के दिलों में आशा पैदा होती है। मैं मानता हूं कि लड़कियों की वहां अधिक पूछ है। वहां का काम जो आगे बढ़ेगा वह तो बढ़ेगा ही, लड़कियों को भी बहुत लाभ होगा।

"आश्रम में आश्रम के जीवन का जो अभ्यास होता है, उसका

भी दर्शन लोगों को होगा। ठीक समय पर उठना, रात को ठीक समय पर सोना, बोलने-चालने में जो अनुशासन और व्यवस्था होनी चाहिए, वह सब आश्रम में जैसी चलती थी वैसी ही चलनी चाहिए।

"बिहार के देहातों में श्रद्धा बहुत है और लोग समझ गये हैं कि दान देना चाहिए; तिसपर भी ऐसे अनेक शख्स मिलेंगे जो बहस करेंगे और दान देना नहीं चाहेंगे। वहां उन्हें भी समझाना है, कटु शब्द नहीं कहने हैं। अपना काम है, लोगों में जागृति ला देना, उनमें प्रेम पैदा करना, समझाकर उनका हृदय परिवर्तन करना। जमीन मिलेगी, पर अगर जमीन न भी मिले तो निराश नहीं होना चाहिए और जिसने जमीन नहीं दी उसका अनादर नहीं होना चाहिए। लोगों के सामने कई कठिनाइयां भी होती हैं, कई ऐसी मुश्किलें रहती हैं, जिन्हें वह दूसरों के आगे एकदम रखते भी नहीं। कइयों के पास जमीन होती है, पर वे नहीं देते हैं और अपनी दिक्कतें कहने में भी हिचकिचाते हैं। हो सकता है शायद किसीके ऊपर कर्ज हो और उसे वह छिपाता हो। तो ऐसी कई आपत्तियां होती हैं, जिन्हें हम नहीं जानते, जिन्हें वे हमारे सामने नहीं रख पाते हैं। इसलिए हमारे मन में उनका अनादर नहीं होना चाहिए।

"वहां किस तरह काम करना है, इसकी ये दो-चार बाते मैंने कह दीं। अब तुम्हें जो पूछना हो, पूछो !"

बहनों ने तो कुछ नहीं पूछा, किन्तु मालती ताई ने कहा कि यदि बहनों को संपत्ति-दान के बारे में आपसे कुछ विचार मिल जायं तो अच्छा होगा। अतः विनोबा ने संपत्ति-दान के सम्बन्ध में बहनों को कुछ विचार दिये। उन्होंने बताया—

कुटुम्ब की सीमा समाज तक बढ़ायें

"जबतक दुनिया में दुःख और भूख है तबतक जो भी उपार्जन करता है, चाहे फिर वह भोजन करता हो या भूखा रहता हो, उसका कर्त्तव्य है कि एक हिस्सा निकालकर फिर खाये, यह मुख्य उसूल है। आजकल हम वैसा नहीं करते। यह मानते हैं कि हरेक कमाई करता है और हरेक की जिम्मेवारी है। और जो बचे हैं, उनकी जिम्मेवारी सरकार की है। ऐसा हम मानने लगे हैं। ठीक है, हरेक की अपनी जिम्मेवारी है। और सरकार की जिम्मेवारी है, यह आप समझते हैं, लेकिन हमपर भी कुछ जिम्मेवारी है, यह हमको समझना चाहिए। अपने कुटुम्ब में यदि आठ भी व्यक्ति हैं तो उन सबकी जिम्मेवारी हमारी है, ऐसा हम मानते हैं। दूध हम खुद कम लेंगे, दूसरों को अधिक देंगे, बीमार को देंगे, बच्चों को देंगे। इसमें जहांतक कुटुम्ब का ताल्लुक है उनके प्रति अपनी जिम्मेवारी का पालन करते हैं, लेकिन कुटुम्ब के बाहर यह विचार लागू नहीं करते। संपत्ति-दान में यह विचार है कि कुटुम्ब के लिए जो करते हैं वही समाज के लिए करना। पर उसका यह मतलब नहीं कि जितना कुटुम्ब के लिए करते हैं उतना ही समाज के लिए भी करें। ऐसा सोचना गलत है। ५/६ हिस्सा कुटुम्बवालों के लिए और १/६ दूसरों के लिए। अगर घर में ५ हैं तो ९वां नहीं तो दसवां हिस्सा तो दे सकते हैं? इस तरह अपनी जिन्दगी का एक हिस्सा, कमाई का एक हिस्सा दूसरों को देना। समाज में ऐसे बहुत लोग हैं, जो खुद आपत्ति में होते हुए भी देते हैं। अगर संपत्तिशाली हैं तब तो देना ही चाहिए; और अगर आपत्ति में हैं तो दूसरे उससे भी अधिक आपत्ति में हैं, यह समझना चाहिए। कुछ लोग जो भीख मांगनेवाले हैं उन्हें देते हैं, उसे हम पसन्द नहीं

करते, क्योंकि यह प्रथा मनुष्य के लिए अच्छी नहीं है। इसमें मांगनेवाले की उन्नति नहीं होती। हमें चाहिए कि भिखारी न भी आवे, फिर भी हम वह हिस्सा समाज के लिए निकालकर रक्खें।

"यह तो हमने आश्रम में किया भी है। इसमें पैसे लेने की बात नहीं है। हमारे कहने के मुताबिक खर्च करना है। कुछ लोगों ने दान दिया भी है और अबतक सालाना ३० हजार के लगभग इकट्ठा हुआ भी होगा। पूरा हिसाब तो मेरे पास नहीं है, पर एक अन्दाज करता हूं। इसे गरीबों को दिया जा सकता है। इसमें हम फंड इकट्ठा नहीं करते। हम आदेश देंगे वह खर्च करेगा। लोग देते भी हैं इसमें। मनुष्य के हृदय में जो परमेश्वर है, उसपर श्रद्धा रखकर हम काम करते हैं। इसमें ज़ोर या जबरदस्ती नहीं है। प्रेरणा होगी तो देंगे। अगर नहीं दे सकते हैं तो नहीं देंगे; लेकिन कुछ तो ऐसे लोग हैं जो सोचते हैं कि दिये बगैर भगवान् प्रसन्न नहीं होते।

दान—कब और कैसे ?

"यह आपने पढ़ा है कि जो अपने ही लिए पकाता है वह पाप सेवन करता है। हम अकेले के लिए नहीं, कुटुम्ब के लिए पकाते हैं। इस दृष्टि से तो गीता-वाक्य भी ठीक है। अकेले के लिए नहीं पकाते . . ., पर उतना ही उसका अर्थ नहीं है। वह कुटुम्ब को भी एक ही मानते हैं। दूसरों को देकर खाना चाहिए। पहले रिवाज भी यही था। लोग भोजन से पहले पूछते थे—कोई अतिथि आया है क्या ? कोई भूखा तो नहीं है ? यह जो नाममात्र को था, वह भी अब छूट गया है।

"संपत्ति-दान यज्ञ भूदान-यज्ञ का पूरक है। गरीब को जमीन

तो दी, लेकिन उसके पास साधन नहीं हैं। तब यह एक मार्ग है, उन्हें साधन देने का। उसका मुख्य उपयोग अभी भूदान की पूर्ति में है। इस दृष्टि से इसके बगैर भूदान अपूर्ण होता है। इसलिए मैं सबसे मांगता हूं। जो दान नहीं देते वे ईश्वर की निगाह में ठीक नहीं करते। एक भाई ने मुझे लिखा कि वह एक रुपये में एक पैसा देगा। पचास-साठ रुपये उसकी आमदनी होगी। वह शख्स, जिसे खाना भी पूरा नहीं मिलता, यदि साल में बारह रुपये भी दे तो कुछ कम नहीं है। एक भाई ने रुपये में एक आना देने को कहा। तो इन उदाहरणों से जीवन में पुण्य-प्रेरणा आती है। मैंने उसमें यही रखा है कि सबकी रजामन्दी से देना। सबको संतोष होना चाहिए। घरवालों को उसके बारे में शक नहीं होना चाहिए। सिर्फ हमको पैसा मिलेगा, इसीसे हमारा काम आगे नहीं बढ़ेगा। पर समाज में वह वृत्ति बनेगी और उससे हमारा काम बनेगा। जिनको देना है वे कुटुम्ब से सलाह-मशविरा करके दें। मान लो, वे चार आना देना चाहते हैं; लेकिन उनके घर के लोग केवल दो आना देना पसन्द करते हैं तो वे दो आने लेना मैं ज्यादा पसन्द करूंगा, क्योंकि उसमें इतने हृदयों की सहानुभूति है। मैं तो अधिक-से-अधिक हृदयों की सहानुभूति चाहता हूं।

"कोई मनुष्य यदि कहीं दूसरी जगह दान-धर्म करता है और आपको दो आना, चार आना जो कुछ भी देता है तो उसका वह दान भी, जिसे वह दूसरी जगह देता है, इसमें शामिल होगा। हां, यदि वह दान ऐसी जगह देता होगा जो योग्य जगह नहीं है तो हम उसे सलाह देंगे। किसमें और किस तरह खर्च करना, वह खुद भी इसके लिए सुझाव दे सकता है। इस तरह हम इसमें संपत्ति का ही नहीं, बुद्धि का भी दान मांगते हैं। इसमें सब बातें ऐसी हैं,

जिनसे मनुष्य खुद हमारा अपना हो जायगा। मैंने सबको स्वतंत्र पत्र लिखा है। मैंने लिखा है कि मेरे व्यापक कुटुम्ब में यदि तुम शामिल हुए हो तो मुझे अपनी कहानी लिखो। और कइयों ने खुले दिल से मुझे सब-कुछ अपना भला-बुरा लिखा भी है। तो उन्होंने दान दिया, उससे भी अधिक मुझे यह चीज अच्छी लगी कि उन्होंने अपनी सब बातें मेरे आगे रख दीं। इससे समाज में पुण्य-भावना पैदा होती है।"

भावना दोनों ओर पलती है

इस प्रकार विनोबा ने भूदान और संपत्तिदान के महत्त्व और विचार को हमें समझाया।

फिर हँसते-हँसते ताई ने बहनों की भावना व्यक्त करते हुए एक प्रश्न पूछा—"बहनें कहती हैं कि हम यहां विनोबाजी की इतनी याद करतीं हैं तो क्या विनोबा भी हमारी याद करते होंगे?"

विनोबाजी मुस्कुराये। उनकी आंखों में स्नेह और ममता की एक चमक आ गई। उन्होंने कहा—

"थोड़े में मैं कहूं तो एक वृक्ष के मूल में यदि पानी का सिंचन किया जाय तो वह सारा पत्तियों को पहुंच जाता है; लेकिन यदि हर पत्ती को अलग-अलग पानी देने बैठें तो बहुत-सी पत्तियां सूखी रह जायंगी। इसलिए मूल को ही सींचना चाहिए। और फिर भावना एक तरफ से नहीं होती, वह वायरलैस के जरिये—बेतार के तार से—एक दूसरे के पास पहुंच जाती है। तुमने यदि याद किया तो उसकी याद यहां भी जरूर होगी। हां, उसका रूप अलग हो सकता है। जहां हमारा स्मरण नहीं होता वहां उसकी भी याद हमें कहां आती है! सद्भावना जरूर पहुंचती है, ऐसा मैंने अनुभव किया है। तीन-चार ऐसे अनुभव मुझे हुए हैं। अभी यहां

जब मैं आया तो कन्नड़ की एक भी पुस्तक मेरे पास नहीं थी। एक पुस्तक थी वह महादेवी ने परंधाम (पवनार आश्रम, वर्धा) भेज दी थी। मैंने महादेवी से कहा कि वह कन्नड़ की पुस्तक तुमने परंधाम भेज दी, लेकिन वह तो मुझे चाहिए। उसे मंगवा लेना चाहिए। दूसरे दिन ही मैंने देखा कि कन्नड़ की पुस्तक मेरे पास आ गई। भगवान् ने देखा, इसकी इच्छा है, इसलिए उसने तुरन्त योजना कर दी। तो जहां सद्भावना होती है, वहां उसके साथ पूर्ति की योजना भी होती है।

"एक किस्सा मैं तुम्हें और कहूं। एक वैज्ञानिक था। उसने एक प्रयोग किया। उसने दो कीड़ों को, जो एक साथ पैदा हुए थे, अलग-अलग रक्खा और एक ही समय में, उनकी क्या दशा होती है, इसका निरीक्षण किया। उसने देखा कि एक समय में एक कीड़े ने जो किया, दूसरे कीड़े ने भी उसी समय वही किया। यह भावना की एकता भी वैसी ही है। तुमने वहां स्मरण किया होगा तो यहां भी तुम्हारा स्मरण जरूर हुआ होगा।

"ऐसा ही वह प्रसंग है, जब मुझे भूदान की प्रेरणा हुई। अब तो वातावरण बन गया, पर उस समय जबकि लोग जमीन देने की तो क्या, मांगने की भी हिम्मत नहीं कर सकते थे। क्योंकि जमीन ऐसी चीज नहीं जो कोई आसानी से दे सके। जमीन तो मनुष्य का आधार है, जिसपर वह खड़ा रहता है और आज का तो जमाना भी अनेक तरह की कठिनाइयों से भरा हुआ है। ऐसे समय में भूदान लेने की प्रेरणा मुझमें हुई। मैंने देखा कि मुझे प्रेरणा दान मांगने की हुई तो आपको प्रेरणा दान देने की हुई। इस तरह दोनों प्रेरणाएं एक साथ होती हैं। जहां सद्भावना की प्रेरणा होती हैं, भगवान् उसकी पूर्ति की योजना भी कर देता

है। जिसका जिसपर स्नेह और सद्भाव होता है, उसकी प्राप्ति भी उसे अवश्य होती है।" फिर हँसकर कहने लगे, "मैंने तुम्हें कहा कि मूल में पानी दिया तो सब पत्तियों को पहुंच जाता है। पर यदि मैं, ज़िन पर मेरा प्यार है उनको अलग-अलग लिखूं तो मुझे कम-से-कम दो-तीन हजार पत्र रोज जरूर लिखने पड़ें, इसलिए यह तरीका मैंने छोड़ दिया और मूल को ही पकड़ लिया।"

इस प्रत्युत्तर में बहनों ने स्वयं ही अपने स्नेह और सद्भाव को द्विगुणित रूप में विनोबा के हृदय से निकले इन भावनामय शब्दों में पा लिया।

यही प्रश्न मेरे दिल में भी कई बार उठा था। विनोबा जब बीमार थे तो उनका ध्यान दूर बैठे पल-भर में नहीं भूल पाती थी। कितनी ही बार मेरी अभिलाषा जाग उठी थी, विनोबा के पास आने और उनके सान्निध्य में रहने की, किन्तु अवसर नहीं मिला। अचानक अप्रत्याशित रूप से मेरी भावना की पूर्ति हुई। कन्नड़ की पुस्तक भगवान् ने विनोबा के पास भेज दी थी। इसी तरह भगवान् ने मेरी भी मनोभिलाषा की पूर्ति कर दी और यहां आकर अपनी इस भावना के प्रत्युत्तर में मैंने सहज स्नेह और आशीर्वादमय शब्द पाये—"मेरे स्मरण ने तुझे बुला लिया।" विनोबा ने कितना सही जवाब दिया है—"वहां याद होगी तो यहां भी उसकी याद जरूर होगी।"

शार्टहैंड की बात

बातचीत जब कुछ रुकी तो विनोबा ने मुझसे पूछा : "शार्टहैंड में लिया है सब ?" फिर कापी देखने को मांगी। बड़े ध्यान से देखते रहे। फिर मुझसे पूछा, "तेरी गति कितनी होगी ?" मैंने कहा, "करीब १२०।" पूछा—

एक मिनिट में कितने शब्द ले लेती हो ?" मैंने जवाब दिया "१४० ।" फिर शार्टहैण्ड की लिखावट को देखकर कहने लगे, "कुछ तामिल जैसी लगती है, कन्नड़ जैसी भी है, कहीं इंगलिश जैसी भी, पर उर्दू अधिक है।" मालती ताई बोली, "हां, सभी भाषाओं का सम्मिश्रण है।" तब हँसते हुए विनोबा कहने लगे, "सब भाषाएं हैं, पर नागरी नहीं है !"

दिया हुआ समय खत्म हो रहा था। ढाई मिनिट बचे थे, कहने लगे "हां, तो ढाई मिनिट बाकी हैं, बोलो !" फिर स्वयं बोले, "जिसमें से आधा मिनिट तो गया, दो मिनिट हैं अब। तुम्हें मालूम है न कि सम्मेलनों में कभी-कभी वक्ताओं को बोलने के लिए केवल तीन मिनिट दिये जाते हैं, घड़ी देखकर। पर देखा गया है कि अच्छा बोलनेवाला तीन मिनिट में भी काफी विचार दे देता है। देखो न, अभी इसने बताया है कि १४० शब्द एक मिनिट में ले सकती है याने ३ मिनिट में ४२० शब्द। तो अखबार का करीब एक कालम हो जाता है। इस तरह तीन मिनिट में भी कितना हो जाता है !" सच है समय के महत्व को समझनेवाले के लिए तो एक-एक मिनिट भी कीमती होता है।

आखिर में बहनों से कहा, "हां, तो अब तुम गया जा रही हो। कितनी बहनें हो ? बारह, यदि एक एकड़ प्रति बहन के हिसाब से प्रतिदिन की मानें तो १५ दिन हैं। उस हिसाब से १८० एकड़ तो लानी ही चाहिए। ठीक है न ! और मिलेगी भी।"

कुछ विचार और प्रेरणा

भूदान की बात में ही, किस प्रान्त के लोग अधिक उदार हैं इसपर अपना मत प्रदर्शित करते हुए सहज रूप से विनोबा बोले कि महाराष्ट्र से बिहार के लोग अधिक उदार हैं। बरार के

लोग अधिक कंजूस हैं। शंकररावजी आजकल वहां काम कर रहे हैं। उन्हें यह अनुभव हो रहा होगा। सम्मेलन में आयेंगे तब बतायेंगे।

आखिर में बहनों ने भूदान पर भावोत्साह से परिपूर्ण एक मराठी गीत गाया और फिर विनोबा का आशीर्वाद लेकर, प्रेरणा का अमर संदेश पाकर वे कमर कसकर गया की ओर कूच करने के लिए उठ खड़ी हुई।

रास्ते और समय की बात निकलने पर हमारे प्रान्तों की यूरोप के देशों से तुलना होने लगी। विनोबा बोले, "यू० पी० की ही आबादी सवा छः करोड़ है, जर्मनी से भी बड़ा। फ्रांस से कोई रूस जाय तो कैसा लगता है, लेकिन हमारा इतना बड़ा देश है। इसीसे पता चलता है कि हमारी संस्कृति कितनी आगे है। एक प्रान्त से बहनें दूसरे प्रान्त में कार्य करने जाती हैं तो ऐसा ही हुआ न जैसे फ्रांस से रूस को जाना। एक ही देश है, इसलिए इस तरह की अनुभूति नहीं होती।"

ढाई बज चुके थे और बहनों का भी गाड़ी का समय हो रहा था, इसलिए उत्साहपूर्ण हृदयों से बहनें बाबा को प्रणाम करके अपने ध्येय का और बाबा की दी हुई सीख का स्मरण करती हुई उठ खड़ी हुईं।

मंगलवार; १७ फरवरी, '५३



: ११ :

दिलों को बदलें

आज प्रार्थना के बाद शायद बाबा का बोलने का कोई विचार नहीं था। प्रार्थना में लोगों की आज काफी संख्या थी। कुछ कार्य-कर्त्ता भी आये हुए थे। जब देखा कि बाबा कुछ नहीं बोलेंगे तो सब उठकर जाने की तैयारी करने लगे। दो-चार कार्य-कर्त्ता भाइयों से आपस में यों ही बातचीत कर रहे थे कि सहजभाव से उसी सिल-सिले में उनका विचार-प्रवाह बह निकला। शायद किसी भाई ने आश्रम खोलने का विचार सामने रक्खा था और बाबा उत्तर में कह रहे थे--

शुरू किये काम को खत्म करके ही छोड़ें

"हरेक गांव में आश्रम कहां हो सकता है? मैं ही तो अपना आश्रम छोड़कर आया हूं, इस वास्ते मेरी इच्छा नहीं है कि आश्रम खोलूं; पर गरीबों का कोई काम चले, ऐसी मेरी इच्छा है। जो बहुत सयाने होते हैं वे थोड़े में पहचान लेते हैं। इतने से ही अगर जाग जाओ तो ठीक है। वैसे तो भगवान् पड़ा ही है, वह जगायेगा ही मौके पर।

"अभी बैठे-बैठे मेरा मन चल रहा है ४० लाख एकड़ भूमि-दान के बारे में। ४ लाख का जिम्मा तो लोगों ने उठा लिया, पर वह बिलकुल आरंभ ही है। काम शुरू कर दिया और छोड़ दिया, ऐसा नहीं होना चाहिए। इस तरह हमें काम नहीं करना है। तब तो काम शुरू ही न करें।

अनारंभो हि कार्याणां प्रथमं बुद्धि-लक्षणम् ।
प्रारब्धस्यांतगमनं द्वितीयं बुद्धि-लक्षणम् ।।

—सबसे श्रेष्ठ बुद्धि तो यह है कि कार्य को आरंभ ही न किया जाय। वह बुद्धि तो हमने पाई नहीं, तो दूसरे दर्जे की बुद्धि है कि जो काम उठाया है उसे पूरा करें ।

"हमने कुछ कोटा दे रक्खा है, उसमें जहां-जहां कुछ परिवर्तन करना है, उसमें आपकी सलाह लेनी है। आंकड़े पर से तो अन्दाज़ लगता है कि कुल ३६ लाख एकड़ जमीन हमें मिलेगी। एक तो वह जमीन है जो 'कल्चरेबल' (काश्त के काबिल) है, वह आधी तो मिले। जो बहुत बड़े लोग हैं वे आधी से ज्यादा दें, बाकी से ६वां, ८वां या १०वां हिस्सा हमें मिलना चाहिए। सरकार की सबकी-सब जमीन हमें मिलनी चाहिए। सब मिलकर हमें ३६ लाख एकड़ मिलनी चाहिए। गया से पत्र आया है कि ३५ हजार एकड़ जमीन प्राप्त हुई है। १०-१५ हजार और कर लें तो ४०-५० हजार करने में इतनी मेहनत करनी पड़ी। काम तो करना ही पड़ेगा।"

इसके बाद सब प्रान्तों से कितनी जमीन प्राप्त होनी चाहिए, इसके आंकड़े विनोबा ने बताये और कहा, "यह सब मिलकर संभव है कि हमें इतनी जमीन मिलेगी। बहुतों को पहले यह ख्याल नहीं था। वह सोचते थे कि जो मैं कहता हूं, वह गलत है।

हृदय-परिवर्तन आवश्यक

"इस कार्य में भी जो काम हम करना चाहते हैं, वह हृदय का परिवर्तन है। इसके बिना क्रान्ति नहीं होगी। ३६ लाख हमें न मिले, उसमें एक-दो लाख हमें कम मिले तो कोई बात नहीं। जैसे ४ लाख हमने कहा तो ४ लाख होनी ही चाहिए, वैसा ३६ लाख का नहीं है। बड़ा आंकड़ा है, कुछ कम हो तो भी चल सकता है।

"तो इस प्रकार शिवजी ने घर बैठे काम कर लिया। ब्रह्मा ने 'अच्छा' कहा और काम हो गया। पहले तो काम करने की भावना होती है। भावना के बाद संकल्प होता है और फिर कृति होती है। इस तरह से हमें इस काम को करना है और सर्वोदय-सम्मेलन के बाद, मैं इस काम में लगनेवाला हूं ऐसा मैंने कह दिया है। हर जिले में हम जा सकेंगे, ऐसा नहीं है। जो जिला ४ लाख वाला कोटा पूरा कर देगा वहां हम जरूर जायंगे। प्राथमिक काम के लिए हम जाना छोड़ देंगे। यह बात अब पुरानी हो गई। उसके लिए अब हमको तकलीफ देने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। आगे क्या काम है और कैसे करना है, उसके लिए हम सूचना देंगे।

राजा-महाराजा लोगों के पास पहुंचें

इस योजना को पूरा करने के लिए हमें बड़े-बड़े राजा और जमींदार लोगों से मिलना होगा और हमें उनसे विनती करनी होगी कि अभी तक तो हम आपके पास पहुँचते रहे, किन्तु अब आपको लोगों के पास पहुंचना होगा। यह आपके हित के अनुकूल है, इसे समझ लो और इस काम को अपना काम समझकर उठा लो। बड़े राजाओं और जमींदारों के हिसाब से जमीन कार्यकर्त्ताओं को नहीं मिलेगी, इसलिए कार्यकर्त्ताओं के मांगने से वह कार्य पूरा नहीं होगा; इसलिए यदि इसे वे (जमींदार) अपना काम मानेंगे तो खुद भी जमीन दे देंगे। कार्यकर्त्ता तो काम करेंगे ही, उनका तो जन्म ही काम करने के लिए हुआ है। पर बड़े लोग काम उठा लें, ऐसी कोशिश हमें करनी चाहिए। आप सब इकट्ठे हुए हैं, इसलिए इतना कह दिया।

"यह शक्य है या अशक्य है, बस यही सोचना है। प्रचंड प्रयत्न करना पड़े तो कोई हर्ज नहीं, उसके लिए हम तैयार हैं।

यदि इसके बावजूद भी अशक्य लगे तो हम कोटा कम करने के लिए तैयार हैं।" फिर हँसते-हँसते कहने लगे कि "अठारह दिन में तो महाभारत हुआ था।"

ध्वजाभाई, जो बिहार के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में से एक हैं, बोले, "इसके लिए तो कार्यकर्त्ताओं की एक फौज चाहिए।"

विनोबा ने तुरन्त ही तो उत्तर दिया, "बिहार में कार्यकर्त्ताओं की फौज है, ऐसा मानकर ही तो हम आये हैं।"

बिहार के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री वैद्यनाथबाबू ने एक विनोद-भरी कहावत कही। उन्होंने कहा कि गांववाले कभी-कभी कहते हैं कि यह तो ऐसा हुआ मानो एक तरफ से तो जाल लगा दिया, एक तरफ से कुत्ता छोड़ दिया और एक तरफ से आग लगा दी। इसी तरह एक तरफ सरकार सीलिंग फिक्स कर रही है तो दूसरी ओर भूदान है। बीच में ही खूब हँसते हुए विनोबा ने पूछा, "पर कुत्ता कौन है इसमें ?" जवाब मिला—"किसी को भी मान लें।" "खैर, लेकिन अब समय आ गया है कि कानून बनना चाहिए।" ग्रामीकरण की बात भी उन्होंने कही।

गया नमूना बने

विनोबा बोले, "ग्रामीकरण जरा दूर का काम है। हिन्दुस्तान के वातावरण में ग्रामीकरण शक्य नहीं है। आपस में जो मेलजोल चाहिए वह अभी नहीं है। जो ग्राम हमें मिले, उसका नमूना हम बना दें तो उससे ग्रामीकरण हो सकता है। "सीलिंग फिक्स" तो हो जायगा पर उसमें से कुछ निकलेगा नहीं। हमें तो अपना नसीब आज़माना है। यदि बिहार का मसला हल होता है तो हिन्दुस्तान का मसला हल हो जाता है। अभी उड़ीसा में एक पूरा-का-पूरा अच्छा गांव मिला है। गया में हमने तीन लाख की मांग की है

तो
हम
नैि

जो
जा
पूर
बहु
औ

हूं
औ
दा
पार
हैं।

के
दा
ज्य
आ
रहे

"य
का

हैं और कहते हैं कि जमीन सब-की-सब हम देते हैं, पर कर्जा चुकाने का जिम्मा आपका ! उनपर कर्जा ही इतना होता है जो जमीन की कीमत से भी अधिक होता है ।

इसीके जवाब में विनोबा ने एक अनुभव सुनाया, "हां, ऐसा भी होता है। एक गांववाले पूरा-का-पूरा गांव देने को तैयार थे पर वे भी कहते थे कि गांव तुम ले लो और हमारा सारा कर्जा चुकाने का जिम्मा भी लो ।"

इसके बाद ही वह भाई फिर बोले कि लोगों में जाग्रति तो आ गई है, वातावरण भी बन गया है, लोग देते भी हैं; पर जब हमारे कार्यकर्त्ता जाते हैं तो कहते हैं कि अभी आप मांगने आये हैं फिर विनोबा आयेंगे तो उन्हें क्या देंगे ? इसलिए इस दक्षिणा को विनोबा के चरणों में अर्पित करने के लिए, अपना आदर और पूजा-भाव अर्पण करने के लिए, वे जमीन रख छोड़ते हैं । जैसे लोग सूतमाला चढ़ाते थे बापू के स्वागत में; विनोबा के स्वागत के लिए श्रद्धा भाव से वे जमीन की थाती रख छोड़ते हैं ।

इसमें सच ही उनकी विनोबा के प्रति, इस सन्त व फकीर बाबा के प्रति भक्ति और श्रद्धा की भावना व्यक्त होती है ।

बुधवार; १८ फरवरी '५३



: १२ :

कार्यकर्त्ता कैसे हों ?

प्रातःभ्रमण में चेतनामय, सुखद, शीतल वायु तो मिलती ही है, जो शरीर को नवस्फूर्ति प्रदान करती है, किन्तु विनोबा के विचारों को पाकर मन भी स्फूर्तिवान् बन जाता है और नई शक्ति पाता है। घूमने का आनन्द द्विगुणित हो उठता है।

अस्वस्थ या अशक्त होने पर भी उनकी चलने की गति तो वही है। आत्मा का बल उनके पैरों को भी मानो गतिमान् बना देता है। अपनी गति और समय का वह पूरा ध्यान रखते हैं। बीमारी से उठने के बाद पहले दिन ९ फरवरी को वह तीन मील एक फर्लांग चले। दूसरे दिन साढ़े तीन मील एक फर्लांग चले, एक घंटा १२ मिनिट में। ता० ११ फरवरी को चार मील एक फर्लांग का चक्कर हुआ। निवास पर आने पर उन्होंने पूछा—"कितने मिनिट लगे?" ७६।। मिनिट लगे थे। तब हिसाब लगाकर कहने लगे थे, "साधारणतः १८ मिनिट प्रति मील की मेरी गति होती है, उस हिसाब से १।। मिनिट अधिक लगा।"

डा० खान का आग्रह

उसी दिन डा० खान आये थे। उन्होंने आग्रहपूर्वक बाबा से इतना अधिक न चलने के लिए कहा। इस आग्रह को उन्होंने मान लिया और तबसे अबतक उनका पांच मील एक फर्लांग का भ्रमण होता है।

आज विनोबा का जूता नया था। वह उन्हें कुछ तकलीफ दे रहा था। इससे उनकी चलने की गति में रुकावट होती थी।

बार-बार उनका ध्यान उस तरफ जाता था और तभी उन्होंने कहा भी, "यह पश्चिम का फैशन है; मालूम नहीं, कैसा फैशन है ! आगे से ही पैर चौड़ा होता है और वहीं से जूते को छोटा बना देते हैं।"

चलते हुए रास्ते में तीन लड़कों को आराम से सड़क के किनारे बैठे देखा तो विनोद में बोले, "ये तीनों लड़के मजे से बैठे हैं; ध्यान धारणा करेंगे या सलाह-मशविरा करेंगे ?"

सूर्योदय हो चुका था, किरणें भी कुछ तेज़ होने लगीं तो श्री प्रभाकर ने हरा चश्मा पहना दिया। पहनने के बाद बोले "हरा कांच पहनते ही सूर्य-प्रकाश से चन्द्र-प्रकाश हो गया। चन्द्रप्रकाश तो घर पर है न ?" (चन्द्रप्रकाशजी, एक भाई हैं जो यहां सर्वोदय-समाज के सहमंत्री हैं, उनके नाम से मज़ाक किया) किन्तु वह साथ ही थे अतः उन्हें देखकर बोले, "अच्छा, साथ ही हैं।" फिर कहा, "पर जो ठंडक हरे कपड़े से मिलती है वह इस कांच से नहीं मिलती।"

कार्यकर्त्ता आधार-मात्र हों

वापस लौटते समय बिहार के एक कार्यकर्त्ता से बातें हुईं। वह भूदान-यज्ञ में काम कर रहे हैं। कुछ कार्यकर्त्ताओं की कमी महसूस करते थे, अतः उनकी इच्छा थी कि एक-दो व्यक्ति विनोबा की ओर से मिलें तो अच्छा। वे स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के अलावा बाहर के हों। पर विनोबा ने कहा, "बेल के लिए खंभा गाड़ते हैं, किन्तु फल-पत्ते लगते हैं बेल को। खंभा तो केवल आधार-मात्र होता है, इसी तरह हमारा कार्यकर्त्ता भी आधार-मात्र ही होना चाहिए।"

श्रद्धा और ज्ञान की सम्मिलित शक्ति

फिर हनुमानजी की कथा सुनाते हुए बोले—"एक बार सभा में विचार चल रहा था कि लंका किसको भेजा जाय। सबसे पूछा गया। कोई आधी दूर तक जाने की बात कहता था, कोई जाकर फिर लौटना मुश्किल बताता था, लेकिन हनुमान शांत बैठा था। तब उसे चुप देखकर जांबवान ने कहा—'क्यों रे हनुमान, तू तो न बूढ़ा है, न कमजोर; फिर चुप क्यों बैठा है ?' वह बेचारा क्या कहता ! वहां तो सब अधूरे-पूरे की बात कहते थे।

"जब उससे कहा गया तो हनुमान बोला, 'अच्छा, यदि आप कहते हैं तो मैं जाऊंगा।' और वह रामजी की शक्ति लेकर चल निकला। उसके पीछे केवल रामजी का बल था। वह लंका मैं गया और वहां उसने विभीषण को पाया। तो तुम यहां से हिम्मत लेकर जाओ और वहीं के विभीषण जैसे किसी स्थानीय आदमी की मदद लो। यदि यहीं से आदमी लेकर जाओगे तो तुम कमज़ोर होगे। यह तरीक़ा ही ग़लत है। वहां जाकर तुम खोजोगे, उसके लिए प्रयत्न करोगे और मनुष्य को लेकर गांव में काम करोगे तो इससे तुम्हारी शक्ति और बढ़ जायगी।

"हनुमान में श्रद्धा-शक्ति थी और रामजी में ज्ञान-शक्ति। श्रद्धा से ही ज्ञान प्राप्त होता है। तो तुम भी श्रद्धा रखकर रामजी के बल को लेकर अकेले जाओ और काम में लग जाओ ! यहां से तो तुम्हें हिम्मत लेकर ही जाना होगा।"

फिर कार्य तथा कार्यकर्त्ता के चरित्र और उसकी दृढ़ता के लिए बाबा ने एक अच्छा उदाहरण दिया। उन्होंने कहा कि "हमारे कार्यकर्त्ता को इतना दृढ़ होना चाहिए कि वह सबको अपने विचारों का प्रकाश दे सके। सूर्य तटस्थ रहकर ऊपर से ही सबको प्रकाश

देता है। वह नीचे आयेगा तो सब जल जायंगे। इसी प्रकार कार्य-कर्त्ता को तटस्थ-वृत्ति से काम करना चाहिए।

अनुभव की योजना

वह कार्यकर्त्ता भाई अपनी योजना बता रहे थे और उस योजना के लिए बाबा की सलाह ले रहे थे। बाबा ने कहा, "हमारे यहां तो अनुभव की ही योजना है। प्लानिंग कमीशन में लाखों रुपये कागजों पर खर्च हुए। काम होने से पहले ही इतना खर्च हो गया, पर हमारी योजना में काम पहले शुरू होता है और फिर योजना बनती है। अनुभव के आधार पर बनी हुई योजना पक्की होती है। यह तो कागजी योजना है, जिसमें समय और पैसा दोनों बहुत लगता है। गांव में काम करने के बाद तुम्हें अनुभव होगा और उस अनुभव के आधार पर एक साल के बाद तुम कुछ योजना तैयार कर सकते हो। यह योजना ज्यादा पक्की होगी। पहले ही काम किये बिना हम क्या जान सकते हैं! जिस गांव में काम न हो पाये या जहां हमें ज्यादा कामयाबी न हो, उस सम्बन्ध में हम यह कैसे कह सकते हैं कि वह गांव नालायक है या हम नालायक हैं? एक जगह जमकर बैठने से ही कुछ काम हो सकता है।

जमकर काम करें

इसी सिलसिले में उन्होंने प्रेमाबहन कंटक का अनुभव बताया। उन्होंने कहा, "प्रेमाबहन एक गांव में जमकर बैठी हैं। शुरू में जब उन्होंने काम आरंभ किया था तो उन्हें बड़ी निराशा-सी होती थी और वह दुःखी भी थीं कि कुछ काम नहीं हो रहा है। वह अपना अनुभव मुझे सुना रही थीं कि एक बार वह एक गांव में गईं, जहां रामकृष्ण परमहंस के शिष्य काम कर रहे थे। वह पांच-सात वर्ष से उस गांव में बैठे थे। इतने समय में दस विद्यार्थी ही

उनके पास आते थे। जब प्रेमाबहन ने उनसे पूछा कि आपको यहां आये कितना समय हुआ ? तो उन्होंने कहा कि अभी तो पांच साल ही हुए हैं। बड़ी मौज के साथ उन्होंने यह कहा। प्रेमाबहन कह रही थीं कि वे मस्त तो थे ही, उनका स्वास्थ्य भी खूब अच्छा था। उसका कारण था कि वे जरा भी चिन्ता नहीं करते थे। और ठीक ही तो है। पांच साल में यदि दस आये तो पचास साल में सौ आयेंगे और तब एक गांव का काम पूरा हो जायगा। तो गांव में तो बादशाह बनकर रहना है। गांववाले तो जमाने से वहां पड़े हैं। वे तो तुम्हारी ताकत आज़मायेंगे। पहले दो-चार साल तो इसी में लगेंगे। तुम पक्के होगे और वहां जमे रहोगे तभी तुम काम कर सकोगे, नहीं तो समझना कि 'हम नालायक है।' तो गांव-गांव में इस तरह जमकर ही काम करने से हम सफल हो सकते हैं।

उन्हीं भाई को संबोधित करते हुए विनोबा फिर बोले, "गांव में काम करते हुए अनेक कठिनाइयां और समस्याएं आती हैं और आयेंगी।" फिर हँसकर कहा, "आपको इंग्लिश बहुत आती है न ? गांव में बच्चों को अंग्रेजी सिखाना होगा। फिर वहां सिद्धान्त का सवाल आयेगा। आप उनसे कहोगे कि अंग्रेजी सिखाना ठीक नहीं है तो वे कहेंगे कि 'यह गुरु चोर है, असली विद्या तो अपने पास रखता है।' और वे शहर के स्कूल में जाना शुरू करेंगे। आप यदि अंग्रेजी सिखायेंगे तो काम एक तरफ रहेगा और अंग्रेजी सिखाने में ही सारा समय जायगा। तो ऐसी समस्या खड़ी होगी। कार्यकर्त्ता को इन सबमें से रास्ता निकालना होता है और काम करना होता है।

शक्ति बढ़ायें

"हमें अपनी मेहनत से काम की शक्ति को हमेशा बढ़ाना है।

मारवाड़ी चार आने के सवा चार आने बनाता है। एक मारवाड़ी लोटा-डोर लेकर निकलता है और बड़े-बड़े मकान बना लेता है। ये किस्से नहीं, सच है।" एक उदाहरण देते हुए उन्होंने समझाया, "एक मारवाड़ी था, उसके पास चार आने थे। मेहनत-मजदूरी से दिनभर में उसने चार पैसे कमाये। अब उन्हें खर्च करते समय उसने सोचा कि चार आने तो स्थिर पूंजी रहनी ही चाहिए और चारों पैसे यदि वह खर्च कर देगा तब तो उसने कुछ भी नहीं कमाया, इसलिए तीन पैसे का उसने खाया और एक पैसा बचा लिया। यही उसकी कमाई हुई। इसके साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि जो बुद्धिमान् होते हैं या जिन्हें खाने को नहीं मिलता वे ही बाहर जाते हैं। राजपूताना रेगिस्तान है और वहां के लोग अधिक गरीब हैं। कोंकणी ब्राह्मणों का भी ऐसा ही है। वे बड़े बुद्धिमान् होते हैं, पर उन्हें अपने देश में खाने को भी ठीक से नहीं मिलता। यहां एक मलाबारी साधुबाबा हैं। वह बहुत योग्य हैं, कितनी ही भाषाएं जानते हैं, पर २५ वर्षों से वह यहां हैं। उनका कुछ उपयोग यहां के गांववाले करें तो अच्छा हो।

गरीबों के लिए ग्राम-संस्थाएं

गरीबों की संस्थाओं के विषय में बात निकलने पर विनोबा ने कहा, "ग्रामों में संस्थाएं ऐसी हैं ही कहां, जो गरीबों के लिए हों। जो भी संस्थाएं हैं वे या तो बड़े लोगों के लिए हैं या मिडिल क्लास के लिए। हम तो चाहते हैं कि गांवों में ऐसी संस्थाएं हों, जो सबके लिए एक मॉडल बन सकें। दो-तीन लड़कों को ही चाहे हम तैयार करें पर वे लड़के ऐसे तैयार हों, जो औरों को भी सिखा सकें और आगे काम कर सकें।" तभी एक भाई ने महिलाश्रम का जिक्र

किया। उसपर भी उन्होंने कहा, "महिलाश्रम भी गरीबों की संस्था नहीं है। वहां की लड़की बाहर जाकर गरीब की तरह नहीं रह सकती। वह संस्था अच्छी है, पर मिडिल क्लासवालों के लिए है। सेवाग्राम संस्था वैसी होती पर वहां तो सब बड़े-बड़े रहे।" फिर विनोदपूर्वक कहने लगे, "वहां जो भी गया उसने प्रशंसा तो की, पर देखा कि वहां काम न होगा तो काम करने के लिए वे बाहर गये। यदि वे लोग बाहर जाकर वहां की कुछ निन्दा भी करते तो हम वहां कुछ काम भी कर पाते। पर जो भी वहां आते, वे बड़ों को आदर देते और बाहर जाकर उसकी स्तुति करते। इसलिए वहां काम नहीं हुआ।" फिर हँसकर पवनार के बारे में कहने लगे, "पवनार का भी ऐसा ही है। बाहर से आते हैं और प्रशंसा करके चले जाते हैं, टिकते नहीं हैं। वहांका जीवन कठोर है, यह मैं जानता हूं। वहां तो तपस्या से काम होता है, इसलिए ठोस आदमी ही वहां टिक पाता है।"

वहां रहनेवाले कुछ भिन्न प्रान्तों के भाइयों की भिन्न आदतों का भी जिक्र किया, "बिहार के दो लड़के वहां आये। एक तो शायद चला गया और एक है। पर उनके लिए रहना कठिन होता है, क्योंकि उन्हें चावल खाने की आदत होती है और उतने चावल वहां नहीं मिलते। जो चावल खानेवाला है उसे तादाद में ज्यादा चाहिए, इसलिए रोटी से उसका पेट नहीं भरता। यदि वह अधिक खा लेता है तो बीमार पड़ता है। इसी तरह रोटी खानेवाला चावल अधिक नहीं खा सकता। थोड़ा ही खाने से उसका पेट फूल जाता है। इसलिए इतने बरस की आदतों को बदलना बड़ा कठिन होता है। पेट को वैसी ही आदत पड़ जाती है और उसे अनुकूल भोजन न मिलने से वह शिकायत करने लगता है।"

'सर्वाइवल ऑफ ऑल'

पर बातचीत में लक्ष्मीबाबू ने टाटा-कंपनी के श्री जहांगीर गांधी से अपनी मुलाकात का जिक्र करते हुए कहा कि सर्वोदय के बारे में बड़ी जिज्ञासा से उन्होंने बातें कीं। वह कह रहे थे कि हमारा सिद्धान्त तो 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' है। इसपर विनोबा ने तुरन्त ही कहा "नहीं, उन्हें कहिये कि उनका तो 'सर्वाइवल ऑफ दि अनफिटेस्ट' है; क्योंकि जो अच्छे-से-अच्छे जवान होते हैं, उन्हें ही सेना में भर्ती किया जाता है और उनका जीवन बरबाद हो जाता है। उनका जीवन नष्ट होता है इतना ही नहीं, उनपर निर्भर रहनेवाले बूढ़े और बच्चे भी बरबाद हो जाते हैं। लड़ाई में सेना में वे जवान लड़ने जाते हैं, घर पर रहती हैं स्त्रियां, बूढ़े और बच्चे। लड़ाई में जवान या तो मर जाते हैं या अपंग होकर आते हैं और उन स्त्री और बच्चों के लिए और भी बोझ-रूप हो जाते हैं। इसमें कहां हुआ 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' ? जो फिटेस्ट हैं, उन्हींके जीवन का तो नाश होता है।

गांधीजी ने सत्याग्रह में बूढ़ों को लिया, बूढ़े सत्याग्रह के लिए बहुत उपयोगी भी रहे। उनका उपयोग भी हुआ और बूढ़े थे, इसलिए उनके जाने से किसी को नुकसान भी नहीं था। तो यह था 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' ! पर हमारा सर्वोदय तो 'सर्वाइवल ऑफ ऑल' है; श्री जहांगीर गांधी को यह बताना चाहिए।

निवास के पास पहुंचते-पहुंचते बाजे बजते हुए सुने तो बाबा ने मुझसे पूछा, "रोज ये बाजे सुनता हूं, क्या बात है ?" मैंने जवाब दिया, "आजकल शादियों के दिन हैं, उसीके बाजे हैं।" इस पर बोले, "हां, इन दिनों काम सब खत्म हो जाता है, गेहूं की फसल भी तैयार हो जाती है। इसलिए लोग इन्हीं दिनों शादी अधिक करते हैं।

रात को बाहर आंगन में बाबा घूम रहे थे। महादेवी ताई की तबीयत कुछ खराब थी। वह जमशेदपुर डाक्टर को दिखाने गई थीं, उसीके बारे में बाबा ने पूछा कि डाक्टर ने क्या बताया। दवा के सम्बन्ध में अपना मत प्रदर्शित किया, "निर्दोष दवा ही सबसे अच्छी दवा है।" बाबा कभी भी दवा के पक्ष में नहीं हैं, यह मैंने देखा है।

खाकी कपड़े पर कम विश्वास

कल एक पागल-सा आदमी, जिसे इन्स्पेक्टर ने हथकड़ी डाल दी थी, विनोबाजी के पास लाया गया। उसकी हथकड़ी खोल दी गई। वह अपनी धुन में कुछ-का-कुछ बोले जा रहा था। बाबा ने समझाने की कोशिश की, पर वह कहां सुननेवाला था! वह तो उल्टा विनोबा को ही मौन रहने को कहता जाता था। वह बाबा के बिस्तर पर पैर की ओर बैठ गया, यह कहता हुआ कि अब गुरु-शिष्य की बातें होंगी—द्रोणाचार्य और अर्जुन की तरह। वह बाबा की सुन ही नहीं रहा था। बहुत देर के बाद आखिर सबने उसे उठने को कहा। उसने शरबत मांगा। उसे नींबू का शरबत बनाकर दिया गया। शरबत पीकर बाबा से कहने लगा, "मेरे सिर में तो आग लग रही है; देखिये, शरबत पीकर कुछ शान्ति मिली है।"

पुलिस-इन्स्पेक्टर उसे ले जाने के लिए उसके नज़दीक आया तब वह कहने लगा, "खाकी कपड़े पर हमको भरोसा कुछ कम होता है।" इस वाक्य को सुनकर बाबा खूब हँसे और उसके जाने के बाद भी हँसते हुए इस वाक्य को एक-दो बार दोहराया "खाकी कपड़े पर विश्वास कुछ कम होता है। ठीक कहता है शायद!"

गुरुवार; १९ फरवरी '५३

: १३ :

प्रधानमंत्री और सुरक्षा-व्यवस्था

सुबह ६ बजने में ९ मिनिट पर बाबा घूमने निकले।

आज बाबा की गति घूमने में रोज से भी अधिक थी। मैंने कहा, "आज आप बहुत तेज चल रहे हैं।" मैंने तो इसलिए कहा था कि बाबा कुछ धीमे चलें तो अच्छा; क्योंकि डाक्टरों ने उन्हें बहुत तेजी से चलने को मना किया हुआ है। पर बाबा उसी रफ्तार से जाते हुए कहने लगे, "हां, आज गति अच्छी है; आज तो मैं दौड़ भी सकता हूं। उसका कारण यह है कि आज हमने नाश्ता पचास मिनिट पहले किया; रोज केवल बीस मिनिट पहले करते थे, इसलिए बीच में काफी समय मिल गया और पेट हल्का हो गया।"

ज़मींदारों के सहयोग का प्रश्न

थोड़ी देर बाद लक्ष्मीबाबू से भूदान-यात्रा के कार्यक्रम के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। बाबा के मन में दो बातें हैं। एक तो जल्दी-से-जल्दी गया पहुंचने की और दूसरी ज़मींदारों और राजाओं से मिलकर भूदान-यज्ञ में उनका सहकार प्राप्त करने की। अभी एक-दो दिन पहले रामगढ़ के राजा उनसे मिलने आये थे। उनसे बाबा को काफी सहयोग मिलने की आशा है। यात्रा में उनसे मिलने का प्रोग्राम भी रहे, ऐसी इच्छा प्रकट की। लक्ष्मीबाबू ने बताया कि आजकल वह पद्म ग्राम में रहते हैं। विनोबा ने कहा, "ऐसे गांवों को ध्यान में रखना चाहिए।" उनका कहने का मतलब था कि यात्रा में यहां पड़ाव का प्रबन्ध करना चाहिए।

लक्ष्मीबाबू ने धीरे-से चलने के बारे में भी पूछा तो उनका आशय समझकर बाबा तुरन्त बोल पड़े, "हां, दस मील से अधिक न हो, इसका ख़याल रखना चाहिए।"

गया में काम जोरों का चल रहा है। बाबा का ध्यान तो यहां बैठे हुए भी गया पर ही केन्द्रित है। वहां की पूरी जानकारी और समाचार तो दामोदरभाई से मिलते ही रहते हैं। गया में जो जोरों से काम हो रहा है, उसमें दामोदरभाई की कार्य-कुशलता भी एक कारण है। समय-समय पर बाबा ने ऐसा कहा भी है। आज भी वह बोले, "वहां हमारे आदमी तो हैं ही, पर बीच-बीच में नेताओं को जैसे जयप्रकाशजी को बुलाया, श्रीबाबू को बुलाया, इस तरह बड़े-बड़े आदमियों को वहां बुलाकर भाषण आदि करवा देने से काम में जोर आता है और यह दामोदर की कार्य-कुशलता है।"

प्रधान मंत्री और पुलिस

लौटते समय सर्वोदय-सम्मेलन और जवाहरलालजी के विषय में चर्चा चली। लक्ष्मीबाबू ने कहा, "जवाहरलालजी की इच्छा तो है आने की, पर उनके साथ पुलिस आदि का जो इन्तज़ाम रहता है, उसे वह पसन्द नहीं करते। इसके अलावा वह यह भी कहते हैं कि वह आ गये और लेक्चर दे दिया तो उससे कोई विशेष लाभ भी नहीं।"

बाबा ने इसका समर्थन किया और कहा, "हां, यह तो ठीक है। वैसे वह परसों यहां मिलने आ ही रहे हैं। उनके ऊपर और भी कई तरह की जिम्मेवारियां रहती हैं।"

लक्ष्मीबाबू ने पुनः कहा, "दिल्ली में जब हम उनसे रविवार को मिले तब भी वह ऑफिस में ही थे।" बाबा बोले, "वह तो जबरदस्त काम करने वाले व्यक्ति हैं ही।"

जवाहरलालजी के लिए सिक्यूरिटी प्रोटेक्शन की चर्चा चली तब बाबा ने कहा, "यदि जवाहरलालजी आवें भी तो आप ही लोग उनकी टीका भी करेंगे। कुमारप्पा ने तो पिछली बार कहा ही था कि यदि जवाहरलालजी आते हैं तो वह नहीं आयेंगे। इसमें कोई विचार नहीं है। यह जानते हुए भी कि पिछले समय बापू का खून हुआ और जवाहरलालजी पर भी हमले की तैयारी थी, हम सावधान न हों तो यह हमारी मूर्खता है। यदि सिक्यूरिटी प्रोटेक्शन नहीं रखना है तो जवाहरलाल को प्राइम मिनिस्टर नहीं रहना चाहिए। फिर वह नेता बन सकते हैं, प्राइम मिनिस्टर नहीं। प्राइम मिनिस्टर के लिए यह जरूरी है। वैसे जवाहरलालजी को तो खुद ही यह सब पसन्द नहीं है।"

इसी चर्चा में रेल, विमान आदि के उपयोग की बात चली। बाबा ने विमान के उपयोग के बारे में कहा कि इससे नज़दीक की सोचने की आदत जाती रहती है। जल्दी-जल्दी में, भागदौड़ में, सब होता है और डिटेल में कुछ सोचा नहीं जाता; सोचने का कोई मौका ही नहीं मिलता और डिटेल में सोचे बिना कार्य होता नहीं, इसलिए मैं तो इसके बहुत पक्ष में नहीं हूं। इसके अलावा इसमें इतनी आवाज होती है जिससे दिमाग भी क्षीण होता है। पर इसे कोई समझता नहीं है या ध्यान में नहीं लाता है।

हिंदी में मराठी शब्दों का प्रयोग

सर्वोदय-सम्मेलन के विषय में श्री वल्लभस्वामी से बात करने लगे। सम्मेलन के सिलसिले में जो परिपत्र आदि निकलते थे, उसके बारे में उन्हें कुछ सूचना देते हुए बोले—"इस संबंध में एक सूचना मुझे देनी है। वह यह कि भाषा में मराठी की छटा आ जाती है और कई जगह तो वैसे शब्दों का प्रयोग अच्छा भी नहीं

लगता। मैंने उसपर निशान लगा दिये हैं, तुम सुधार लेना।" वल्लभस्वामी ने हँसते हुए कहा, "हमें तो हिन्दी को विशाल बनाना है न? धीरे-धीरे ये प्रयोग भी इसमें प्रचलित हो जायेंगे।" तब विनोबाजी ने विनोद में कहा, "वह तो टंडनजी जैसे व्यक्ति इसका उपयोग करें तो हो सकता है; वल्लभस्वामी या और कोई करने लगे तो नहीं चलेगा।"

फिर वह अपनी भाषा का उदाहरण देते हुए बोले, "पहले मेरी भाषा के लिए भी लोग कहते थे कि यह तो 'विनोबा की स्पेशल स्टाइल है'; पर अब कहते हैं कि 'उसमें फर्क करना अच्छा नहीं लगता।'"

निवास पर पहुंचे। पांच मील एक फर्लांग चलने में कुल ९६ मिनिट लगे। बाबा बराबर समय का पूरा ख़याल और हिसाब रखते हैं। कहने लगे, "हमें ९२ मिनिट का हक है, चार मिनिट ज़्यादा लगे।"

वज़न किया, ९० पौंड निकला। देखकर कहने लगे, "हां, अब काशी तक तो पहुंच गये।" काशी से जब वह निकले थे तब उनका वज़न ९० पौंड था।

बाबा और बापू

शाम को प्रभाकरजी से बापू और बाबा के विषय में बात कर रही थी। प्रभाकरजी ने कहा, "बापू और बाबा में काफी फर्क है। बापू तेज स्वभाव के थे। उनकी पित्त प्रकृति थी, इसलिए कभी वह हँसते हुए कहते भी थे, "अब ज्यादा मत बोलो, मेरा पित्त चढ़ रहा है।" पर विनोबा सौम्य स्वभाव के हैं। बापू हृदय को पकड़नेवाले थे, हृदय की बात को तुरन्त समझ लेते थे, विनोबा अधिक मैथेमेटिकल और लॉजिकल हैं। बापू पिता थे—सच्चे अर्थ में।

बापू तो खूब मज़ाकिया थे, हमेशा छेड़ते ही रहते थे, किसी-न-किसीको। विनोबा भी मजाक तो खूब करते हैं, पर उनका मज़ाक कुछ और ढंग का, याने महाभारत, रामायण, दर्शन-शास्त्र के विचारों से ओतप्रोत, होता है।" ठीक भी है, विनोबा के विचार गंभीर होते हैं। उनका अध्ययन और चिन्तन गहरा होता है। वह पंडित हैं। इसीलिए उनका विनोद सदा बहुत ही सौम्य पर साथ ही गंभीर और शिक्षाप्रद रहता है। हँसते-हँसते विनोद में भी वह कोई शास्त्र की कहानी सुना देंगे, रामायण का कोई प्रसंग कह डालेंगे, इतिहास की किसी घटना का उल्लेख करेंगे या अपने अनुभव का एकाध किस्सा सुनायेंगे। वह शिक्षक हैं——उत्तम शिक्षक।

बाबा के साथ रहते हुए बापू की पग-पग पर याद आती रहती है। और बाबा बापू के रिक्त स्थान की पूर्ति हर रूप में कर रहे हैं।

शुक्रवार; २० फरवरी '५३



: १४ :

विविध चर्चाएं

बाबा घूमने का समय जल्दी-जल्दी करते जाते हैं। जब भी प्रकाश हल्का होता है, वह घूमने निकल पड़ते हैं। सूर्योदय में नित्य एक-दो मिनट का अन्तर पड़ता है, वैसे ही उनके प्रातः-भ्रमण में भी रोज दो-तीन मिनट का अन्तर होता जाता है। आज ६ बजने में १२ मिनट पर निकले। वापस निवास तक पहुंचने में पूरे ९५ मिनट लगे—पांच मील एक फर्लांग के लिए।

घूमते समय लक्ष्मीबाबू से बात करते हुए कहने लगे, "ऐसा लगता है गोपबाबू को मेरी चिट्ठी नहीं मिली। श्रीबाबू को भी चिट्ठी नहीं मिली थी। उनकी दूसरी चिट्ठी आई तब पता चला। अब उस पत्र की नकल दुबारा भेजी है। पत्रव्यवहार में कभी-कभी इस तरह बहुत समय बर्बाद हो जाता है। और इसलिए अब मैं इस विचार का होता जाता हूं कि बहुत आवश्यक काम हो तो संदेशवाहक के द्वारा ही पत्र भेजना चाहिए। इस तरह काम जल्दी होता है।" फिर कहा, "कर्मयोगी शीघ्रकारी होता है। यदि शीघ्र-कारी नहीं है तो वह कर्मयोगी नहीं है।" लक्ष्मीबाबू ने कहा, "इसमें खर्च का प्रश्न आ जायगा।" इस पर बाबा बोले, "जीवन के पंद्रह दिन इंतज़ार में जाते हैं उसकी तो क़ीमत करो! जीवन का यह समय पैसों से कहीं अधिक मूल्यवान है!"

आयोजना का चमत्कार

इसके बाद योजना की शक्ति का महत्त्व पर चर्चा चल पड़ी। बाबा ने कहा—"स्वराज्य-शक्ति का अर्थ ही योजना-शक्ति

होता है। हमें योजनापूर्वक काम करना चाहिए तभी काम सफल हो सकता है।" शिवाजी की योजना-शक्ति का उदाहरण देते हुए कहा, 'शिवाजी ने सिंहगढ़ का किला योजना से ही जीता था। उन्होंने देखा कि सामने मुकाबला जबरदस्त है। वैसे तो दस हजार की सेना भी उसे जीतने में पर्याप्त नहीं होगी। यह सब सोचकर उन्होंने केवल दो सौ सिपाहियों को तैयार किया और मूसलाधार वर्षा में उन्होंने सिपाहियों को लेकर किले पर हमला कर दिया और इस तरह बड़ी आसानी से किला फतह किया।

"ऐसा ही दूसरा उदाहरण नेपोलियन का है। कड़ी सर्दी में नेपोलियन ने आल्प्स पर्वत से होकर आस्ट्रिया पर आक्रमण किया और विजय पाई। किसी को कल्पना भी नहीं थी कि नेपोलियन इस शीत में आल्प्स पर्वत की ओर से चढ़ाई करेगा। सामनेवाला सोचता रहे और अपना काम हो जाय, यही है योजना का महत्त्व। योजनापूर्वक कोई भी काम करने से वह जल्दी और आसानी से हो जाता है। उस योजना को तुरन्त काम में भी लाना चाहिए। यदि हम यह सोचते रहते कि अभी तो असेम्बली चल रही है, इससे पहले इलेक्शन थे, उससे पहले वर्षा थी तो अभी तक काम शुरू ही न हुआ होता और अपने विचार को तुरन्त कार्य में लगा देने से जो काम आज तक हुआ है, वह हमारे सामने है। इसलिए काम और उसकी सफलता के लिए योजना और शीघ्रता दोनों ही जरूरी हैं।"

प्रवास का प्रवृत्ति पर प्रभाव

फिर पठानों के स्वभाव के बारे में चर्चा चल पड़ी। इसपर विनोबा बोले, "यदि मुखाकृति से स्वभाव और चरित्र का मेल मानें तो पठानों का जैसा रेखापूर्ण चेहरा होता है, वैसा ही सीधा,

उनका दिल भी होना चाहिए। पर यहां आये हुए पठानों को हम वैसा नहीं पाते हैं। इसका एक कारण तो यह है कि उनमें से जो यहां आते हैं वे या तो ख़राब-से-ख़राब बदमाश होते हैं या अच्छे-से-अच्छे। मारवाड़ियों को ही देखो न! बाहर गये हुए मारवाड़ी बुद्धिमान होते हैं, किन्तु स्थानिक मारवाड़ी बहुत करके सीधे और सरल होते हैं। अतः अपने प्रान्त से बाहर गये हुए मारवाड़ियों के स्वभाव आदि से हम उस प्रान्त के सब मारवाड़ियों की तुलना नहीं कर सकते या ऐसा नहीं मान सकते कि सब एक समान हैं। इसी प्रकार हिन्दुस्तान आये हुए अंग्रेजों के उदाहरण से हम इंग्लैंड-निवासी अंग्रेजों के स्वभाव, रहन-सहन और अन्य गुणादि को नहीं देख और नाप सकते।" इसके लिए उन्होंने एक बड़ा ही अच्छा उदाहरण दिया, "जब कोई अंग्रेज भारत आता था तो वह हिन्दुस्तानी भाषा की प्राइमरी किताबें जहाज पर पढ़ता था। ये किताबें ऐसी होती थीं, जिनमें 'आप' शब्द तो कहीं लिखा ही नहीं होता था। उसमें 'तू' या 'तुम' का ही उल्लेख होता था। इस प्रकार उस 'खास किताब' को पढ़नेवाला कोई भी अंग्रेज तू या तुम ही सीखता था और वैसा ही उपयोग करना उसके लिए स्वाभाविक था। इसीसे हिन्दुस्तानियों के प्रति उसकी भाषा रूखी और कड़ी-सी हो जाती थी। इससे हम यह नहीं मान सकते कि उनके मूल स्वभाव में भी वैसा ही कड़ा और रूखापन होगा।"

पठान का मूल

"इसके अलावा और एक उदाहरण लीजिये : जब वर्धा में पीस-कान्फ्रेंस हुई थी तब ऊंचे दर्जे के कुछ चुने हुए अंग्रेज वहां आये थे। इस पर से भी हम यह नहीं कह सकते कि सभी अंग्रेज इस तरह की उच्च कोटि के होते हैं। यहां से भी कई भारतीय,

जो विदेश जाते हैं, उनके जीवन से यहां के औसत भारतीय के जीवनमान का अनुमान लगाना कठिन है। इसी प्रकार यहां जो अंग्रेज आते हैं, उनके व्यवहार, जीवन और संस्कृति से वहां के जनसाधारण के जीवन, उसकी भाषा और संस्कृति को मानना, पहचानना और अनुमान लगाना कठिन है।" फिर पठानों का सूत्र पकड़ते हुए बोले, "संस्कृत में पठान को "पख्तून" कहा गया है। भाष्यकारों ने इसका अर्थ किया है—पच् धातु से यह बना है, अर्थात् जो परिपक्व बुद्धिवाला हो वह "पख्तून"। पर भाष्यकार पठानों को बुद्धिमान क्यों मानेगा? लेकिन मुझे तो यह ठीक लगता है। पच् धातु से ही यह पख्तून बना है। वैदिक ग्रन्थों में भी इसका जिक्र है। इस पर से यह भी मालूम होता है कि वहां पहले वैदिक संस्कृति थी। फिर वहां बौद्ध संस्कृति का विस्तार हुआ। बौद्ध संस्कृति के बहुत चिह्न वहां अब भी पाये जाते हैं। तदनंतर मुसलमानी संस्कृति का वहां प्रवेश हुआ, जिसका असर अभी तक उनपर बहुत अधिक है। इन सबको उनकी पुख्ता बुद्धि ने पचा लिया।"

इस प्रकार एक छोटी-सी चर्चा में संस्कृति का छोटा-मोटा-सा इतिहास व उसकी रूपरेखा व मानव-स्वभाव जानने को मिल गया।

लक्ष्मीबाबू ने बातों के सिलसिले में बाबा से कहा कि पहली तारीख को अनुग्रहबाबू आ रहे हैं। उसी दिन यदि श्रीबाबू को भी बुला लिया जाय तो कैसा रहे? इसपर बाबा ने कहा, "बड़े लोगों को ऐसे लिखना ठीक नहीं। वह तो इस तरह हैं कि

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्यजीव्यतां तद्वद्भूत समागमः॥

जैसे दो लकड़ी के टुकड़े जो पेसिफिक और अतलांतिक से बहते-

बहते आ रहे थे, क्षण-भर के लिए टकराये और फिर अलग हो गये। इसी तरह से ये कभी मिल जायंगे। इस तरह खास प्रयत्न या विशेष रूप से लिखने की आवश्यकता उसके लिए नहीं है।"

हम लोग गांव के किनारे आ पहुंचे थे। नेहरूजी कल बाबा से मिलने आने वाले हैं, अतः उनके स्वागत की तैयारी के लिए गांव में सफाई-सफेदी इत्यादि हो रही थी। लोग उत्साह से तैयारियों में लगे थे। यह देखकर बाबा बोले, "जवाहरलाल जी कल आयेंगे पर लोगों को आज से ही काम मिल गया।" गांव के इस उत्साहपूर्ण वातावरण से प्रसन्नचित्त हम सब अपने निवास पर आ पहुंचे।

बाबा का गला ठीक नहीं है। संध्या को डा० खान आये। सुबह अधिक न घूमने के लिए उन्होंने बाबा से आग्रह किया, किन्तु बाबा की मौन मुस्कराहट से यह पता न चला कि उन्होंने इस आग्रह को मान लिया है या नहीं। ठीक ऐसे, जैसे एक बालक को कुछ न करने के लिए कहें और सामने वह केवल हँसकर रह जाय, उसमें न उसकी स्वीकृति रहती है और न ही प्रतिकार। ठीक वैसा ही कुछ भाव बाबा की मुस्कराहट में था।

तन से ज्यादा काम की चिन्ता

लक्ष्मीबाबू से शाम को फिर भूदान-कार्य के बारे में बातें हुई। इसी चर्चा में जब बाबा से भूदान-यात्रा में प्रतिदिन अधिक न चलने का आग्रह किया गया और एक स्थान पर चार-पांच दिन ठहर कर आगे बढ़ने का सुझाव दिया तो हँसकर उन्होंने विनोद के साथ, किन्तु भूदान-यात्रा की विशेषता पर दृष्टि रखते हुए और कार्य के महत्त्व की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा, "मेरी फीस एक लाख एकड़ प्रति मास है; यह मुझे मिले तो फिर घूमने

की जरूरत ही नहीं और आप जहां कहें वहां मैं आराम से स्थिर होकर बैठ जाऊंगा ।" यह सुनकर तो किसीको कुछ कहने को रहता ही नहीं था । बाबा को तो पहले अपने काम की चिन्ता है, बाद में अपने तन की ।

लेकिन काम के अलावा बाबा अध्ययन-चिन्तन में भी ऐसे मग्न हो जाते हैं कि इस ओर भी दूसरों को उनका ध्यान दिलाना पड़ता है। इस तरह अधिक परिश्रम से उनका दिमाग चाहे न थके, पर शरीर पर तो उसका असर होता ही है ।

सुंदर अक्षरों का महत्त्व

बाबा अक्षरों की सुन्दरता का बहुत ध्यान रखते हैं। ख़राब अक्षरों को तो वह देखना भी पसन्द नहीं करते। पर पत्र-व्यवहार में तो हर तरह के अक्षर उनको पढ़ने ही पड़ते हैं। उसीको लेकर चर्चा चली तो वह बोले, "अक्षर खराब देखते ही मैं चिढ़ जाता हूं, पत्रों में अक्षर बहुत खराब होते हैं। चार-पांच घंटे लगातार अध्ययन करने से मैं इतना नहीं थकता, जितना एक-दो घंटे के पत्र-व्यवहार से थक जाता हूं ।" फिर हँसकर कहने लगे, "मेरे अपने अक्षर भी तो खराब हैं, पर मैं तो लिखता ही नहीं।" उनकी इस बात से मुझे बापू की याद आई। बापू के अपने अक्षर कैसे भी हों, पर वह सुन्दर अक्षर पर बड़ा ध्यान देते थे और इसीलिए एक बार स्व० महादेवभाई के मोती-जैसे अक्षर देखकर उन्होंने कहा था, "सुन्दर अक्षर होना भी विद्या का एक लक्षण है ।"

इस बीच श्री थोमस चेरियन बाबा के पास आये । उनके बारे में बाबा बोले, "ये अमेरिका जाकर आये हैं और अब भूदान के काम में लगे हैं। उत्साही नौजवान हैं, इनसे अच्छा परिचय

कर लेना चाहिए, हमारे काम में यह बड़े उपयोगी रहेंगे।" इस तरह आपस में विविध चर्चाएं होती रहीं।

पंडित जवाहरलालजी के आगमन के निमित्त सुरक्षा-पुलिस यहां आई हुई है। आज प्रार्थना में उन्हीं लोगों की संख्या अधिक थी। प्रार्थना के बाद उनको संबोधित करते हुए विनोबा-जी बोले—

सिपाही : देश के सेवक

"सिपाहियों को तो मैं क्या कह सकता हूं! यहां जो किताबें हैं, उन्हें वे देखें। यहां आप लोग आ गये हैं तो मैं आपसे इतना ही कहूंगा कि हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिलने के बाद बहुत जिम्मे-दारी आप पर आई है। अन्य नौकरियों की जितनी प्रतिष्ठा होती है, उससे कम प्रतिष्ठा सिपाहियों की नहीं होती। फिर भी अंग्रेजों के राज्य में जो सिपाही थे वे जनता को पीड़ा देनेवाले थे, इसलिए सिपाहियों के लिए लोगों के मन में अभी तक आदर पैदा नहीं हुआ। वास्तव में तो ऐसा होना चाहिए कि सिपाही देश के सबसे पहले सेवक हों, वे सबके आदर-पात्र होने चाहिए और होंगे, लेकिन वैसा परिवर्तन होना चाहिए। इसलिए हम तो मानते हैं कि देश में उत्तम चरित्रवान सिपाही हों ताकि लोगों का विश्वास उनके लिए पैदा हो।

"लंदन-पुलिस की बहुत प्रशंसा है। वहां के बच्चे भी उनपर बहुत भरोसा रखते हैं और पुलिस भी उनकी बहुत सेवा करती है। हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तान में भी ऐसा हो और ऐसा होगा। उसके लिए सिपाहियों को रोज कुछ अध्ययन का मौक़ा मिलना चाहिए। काम तो उन्हें करना ही होता है, लेकिन आधा घंटा रोज़ 'गीता-प्रवचन', गांधीजी की 'आत्मकथा' इन पुस्तकों का

थोड़ा पठन होना चाहिए। इससे हृदयशुद्धि के लिए बड़ा आधार मिलता है।

"हमारे पास तो आपको देने के लिए यही एक चीज है; बाकी हम तो खुद ही फकीर हैं। हमारे पास तो देने को विचार ही हैं। इसलिए आपमें से जो पढ़ सकते हैं, वे कम-से-कम 'गीता-प्रवचन' तो ले लें और रोज पढ़ें, ऐसी मेरी आपसे सिफारिश है।"

रात को भी ये सिपाही बाबा का दर्शन बड़ी श्रद्धा से करने आये थे और श्रद्धापूर्वक दर्शन-प्रणाम करके चले गये थे। इन कर्मठ सिपाहियों में भी बाबा की अमृतवाणी ने इतनी श्रद्धा जाग्रत कर दी। उनमें लगभग सभी को 'गीता-प्रवचन' खरीदने को उत्सुक पाया। भक्ति, ज्ञान और कर्म की इस पावन त्रिवेणी में स्नान कर कौन श्रद्धावान नई चेतना, नई प्रेरणा और नई भावना नहीं पायेगा!

शनिवार; २१ फरवरी '५३



: १५ :

नेहरूजी का आगमन

आज का दिन बड़ा महत्वपूर्ण है। आज ही कस्तूरबा की पुण्यतिथि है और आज ही जवाहरलालजी इस नन्हे-से ग्राम में बाबा से मिलने आ रहे हैं। हम सभी भूत और वर्तमान की अनेक भावमयी स्मृतियों और अनुभूतियों से अभिभूत-से हैं। पर बाबा का कार्यक्रम यथावत् क्रमानुसार चल रहा है। उनकी भावना भी कर्म का अनुसरण करती है न! हमेशा की तरह प्रातः भ्रमण के लिए निकले।

छोटी-छोटी बातों की ओर भी बाबा ध्यान दिलाते रहते हैं। घूमने के समय बाबा के साथ अन्य लोग भी रहते ही हैं। हम सब जा रहे थे, सामने से मोटर आ रही थी। उसे देखकर बाबा तुरन्त रास्ते के बिल्कुल एक किनारे हो गये हैं, ताकि मोटर ठीक बीच रास्ते से होकर जाय और सब धूल से बच जायं। पर कभी-कभी मोटर ही बाजू से जाती है और धूल व धुआं उड़ता हुआ आंख-नाक में पहुंचता है। आज इसीको लक्ष्य करके बाबा बोले थे, "बाजू से चलेंगे तो धूल नहीं खानी पड़ेगी, हम रास्ते पर चलते हैं और मोटर बाजू से चलती है तो नतीजा यह होता है कि धूल खानी पड़ती है।"

रोज की तरह आज भी डाक्टर के आग्रह के बावजूद पांच मील एक फर्लांग का ही चक्कर लगाया। इसपर लक्ष्मीबाबू ने बाबा से कहा, "आखिर आप घूम तो उतनी ही दूर लिये"। बड़े सयाने बालक की तरह धीमे-से, पर अपनी ज़िद-भरी दृढ़ता से बाबा

बोले, "हां, कल डा० की बात पर से मैंने इतना ही बोध लिया कि आज धीमे चला।" आज जाते समय ५६ मिनिट और आते समय ५२ मिनिट लगे, इस तरह १०८ मिनिट में पांच मील एक फर्लांग चले। डाक्टर के आग्रह का यही परिणाम था कि ९५-९६ मिनिट के बदले १०८ मिनिट घूमने में लिये।

भाषाओं की चर्चा

विनोबा ने अनेक दर्शन-शास्त्रों के अध्ययन-मनन के साथ अनेक भाषाओं का भी अध्ययन किया है। वह देशी-विदेशी सब मिलाकर लगभग सत्रह-अठारह भाषाएं अच्छी तरह जानते हैं। उनका जानना याने उस भाषा का व्याकरणसहित पूर्ण ज्ञानोपार्जन है। इसीलिए किसी भाषा का तुलनात्मक विवेचन वह बड़ी खूबी से करते हैं। आज रास्ते में श्री चेरियन् से मलयालम् में दो-चार वाक्य बोले और कहा, "भाषा मीठी है, अधिकतर उच्चारण समुद्र-ध्वनि से लिया है। जैसे फ्रेंच में नासिका-स्वर से बोलते हैं, वैसे ही इस भाषा में भी अधिकतर नासिका-स्वर से ही बोलते हैं। भाषा बहुत सरल है।" एक-दो शब्दों का उदाहरण बताते हुए कहा, "पोयी" याने "गया" इसमें 'मैं, तू, वह' सब-कुछ आ गया। हिन्दी में सड़क स्त्रीलिंग और उसीका दूसरा शब्द 'रास्ता' पुलिंग होता है, वैसा इसमें नहीं है।"

जब मलयालम् भाषा को विनोबा ने सरल बताया तब मैंने उनसे पूछा, "लेकिन बंगला इत्यादि भाषाएं जितनी आसानी से समझ आती हैं, दक्षिणी भाषाएं वैसी आसानी से नहीं समझ पाते।" इसका उत्तर उन्होंने दिया "उसका कारण यह है कि संस्कृत के तत्सम शब्दों का समावेश उसमें है और बाकी उनकी अपनी भाषा के मूल शब्द हैं, इसलिए समझना कठिन पड़ता है।"

श्री चेरियन् का परिचय वल्लभस्वामी ने दिया कि उनके पिता ने १९२० के आंदोलन में भाग लिया था। उन्हें अमेरिका से समाज-शिक्षण के लिए छात्रवृत्ति मिली थी और हाल में वह यूरोप घूमकर आये हैं और अब भूदान के काम में लग जाना चाहते हैं।

अमेरिका में भूदान के लिए दिलचस्पी

श्री चेरियन् ने बताया कि भूदान की चर्चा अमेरिका में भी है और अखबारों के मुखपृष्ठों पर कभी-कभी इसके समाचार छपते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वे लोग इस नये रास्ते और इस अहिंसक क्रान्ति के नये प्रयोग में काफी दिलचस्पी रखते हैं।

मलाबार के ईसाई

श्री चेरियन् की वेशभूषा और रहन-सहन से ज़रा भी प्रतीत नहीं होता था कि वह ईसाई हैं। इसीलिए विनोबा ने कहा भी कि अक्सर मलाबार की ओर के ईसाइयों का रहन-सहन बिल्कुल हिन्दुओं जैसा है। मैंने तब उनसे कहा कि हां, कई लड़कियों को भी, जो मलाबार की तरफ की हैं, मैंने देखा है कि उनके रहन-सहन का ढंग और उनकी वेश-भूषा बहुत-कुछ हिन्दू लड़कियों के जैसी होती है। इस विषय पर तथा ईसाइयत आदि के सम्बन्ध में कुछ बातें होती रहीं, जिनका सिलसिला निवास पर पहुंच जाने पर ही समाप्त हुआ।

आज सारे दिन खूब चहल-पहल रही। दर्शनार्थियों का तो तांता-सा लगा था। बाबा तो तटस्थवृत्ति से अपने नित्य-नियम के अनुसार कार्याध्ययन आदि में लगे थे, फिर भी रोज के जैसी शान्ति उन्हें नहीं मिल पा रही थी। दर्शनार्थी शांति और श्रद्धा से

आकर दर्शन करके लौट जाते थे, पर बाबा के अध्ययन और विश्राम में बाधा पहुंचती ही थी। लेकिन श्रद्धाभाव से आये उन लोगों को हताश भी तो नहीं किया जा सकता था। यद्यपि एक बार तो बाबा बोल ही पड़े "आज कोई मुझे चिन्तन करने दे, ऐसा नहीं लगता।" पर सभी इसके लिए निरुपाय थे।

फ्लोर और सीलिंग

देश के प्रधानमंत्री की सवारी तो आ ही रही थी, पर उस सवारी के आगे-पीछे प्रान्तीय मंत्रियों की भागदौड़ भी थी ही। इसी सिलसिले में श्री कृष्णवल्लभ सहाय, बिहार-सरकार के मालमंत्री, भी उपस्थित थे। दोपहर के बाद वह बाबा से बातें करने आये। पहले उनकी बीमारी की ओर लक्ष्य करके काम की धीमी गति का मानो कारण बताते हुए कहा कि "आपकी बीमारी से भी काम कुछ कम हुआ।" पर बाबा ने तुरन्त ही हँसकर जवाब दिया, "हां, हमारी बीमारी से लोगों को प्रेरणा भी मिली।" इसी तरह बिहार में भूमिदान के काम की चर्चा वह कर रहे थे और तब मंत्रीजी ने बिहार में चार लाख एकड़ भूदान का जिक्र किया। बाबा ने तो अब नया संकल्प कर लिया था। बिहार की भूमि-समस्या पूरी तरह से हल करने का उन्होंने निश्चय किया था, इसलिए जब चार लाख की बात उन्हें कही गई तब वह फौरन बोले, "चार लाख नहीं, चालीस लाख!" इसी दौरान में जब कृष्णवल्लभबाबू सरकार की ओर से सीलिंग फिक्स करने आदि के बारे में कह रहे थे तो बाबा ने बड़ा सुन्दर विनोद किया। उन्होंने कहा "यूं तो पंचवर्षीय योजना में भी भूमि-वितरण है ही, पर वह दूर की बात है। इसमें सरकार द्वारा सीलिंग फिक्स करने की बात है। सीलिंग माने हैं छप्पर। लेकिन हमें तो पहले फ्लोर बनानी है न! तभी सीलिंग

फिक्स होगी ?" फ्लोर और सीलिंग की बुनियाद में बाबा का कितना यथार्थ दर्शन था !

'साधु बाबा' और 'राजा'

अब पंडितजी के आगमन का समय हो रहा था। बाहर-भीतर खूब धूमधाम थी। सर्वोदय-सम्मेलन की तैयारियां तो धीमे-धीमे चल रही थीं, किन्तु पंडितजी के आगमन के संवाद से एक नवजीवन की लहर दौड़ पड़ी। उनके स्वागत की तैयारियों के बहाने सर्वोदय-सम्मेलन की तैयारी को भी गति मिली। चारों ओर चहल-पहल थी। रास्ते साफ हो रहे थे, मकानों की सफेदी हो रही थी, अन्य आवश्यक इन्तजाम में सब इधर-उधर घूम रहे थे। छोटा-सा चांदील ग्राम जाग उठा था, उसका तो भाग्य ही मानो जाग उठा था। विनोबा के शब्दों में, "चांदील का पूर्व पुण्य प्रकट हुआ है।"

सब तैयारियां पूर्ण थीं। मंगल तोरणों से ग्राम-वीथियां सजी थीं। ग्रामीणजन प्रसन्नवदन और भाव-भरे हृदयों से दोपहर से ही अपने लाड़ले वीर जवाहर का स्वागत करने आ खड़े हुए थे। उनके शब्दों में, 'भारत के राजा' का स्वागत-सत्कार करने।

हां, पहले जमाने में साधु-संतों के पास राजा अपना आदर-भाव प्रकट करने और उनका दर्शन करने के लिए जाते थे। यह हिन्दुस्तान का राजा भी आ रहा था इस महासंत के दर्शन के लिए। ग्रामवासियों के संत तो विनोबा 'साधु बाबा' ही हैं और जवाहरलाल जी 'राजा'। दोनों के प्रति उनका श्रद्धा और प्रेम उमड़ रहा था। जनता ने बापू को खोकर अब बाबा को पाया है। जवाहरलालजी भी मानो अब बापू के रिक्त स्थान को बाबा के प्रेम से पूरित करना चाहते हैं।

सुखद मिलन

शाम को ठीक पौने चार बजे नेहरूजी चांदील आ पहुंचे। हम बहनों ने उनका अक्षत-कुंकुम से स्वागत किया, पुष्प-सुवासित सत की माला पहनाई। दरवाजे पर ही बाबा जवाहरलालजी को लेने आये थे। कितने प्रसन्न थे नेहरूजी ! मिलन का यह दृश्य ऐसा लग रहा था मानो बापू से ही वह मिल रहे हों। बच्चों की तरह ही नेहरूजी बोल उठे, "देखिये, ठीक समय पर पहुंच गया हूं।" हँसते हुए बाबा के साथ अन्दर आये। अस्वस्थ बाबा के स्वास्थ्य के बारे में पूछा, "आपके स्वास्थ्य की हालत अब कैसी है ? कुछ तरक्की हो रही है न ?" बाबा ने मुस्कराते हुए कहा, "अब तो ठीक है।" फिर नेहरूजी के साथ उनकी बेटी इंदिरा के न आने का कारण तथा वह कैसी है, इत्यादि पूछताछ की। नेहरूजी ने कहा कि बच्चों की तबीयत कुछ अस्वस्थ होने से वह साथ में न आ सकी। फिर नेहरूजी तलैया-बांध का वर्णन करने लगे। पानी के इतने बड़े संग्रह का जब वह वर्णन कर रहे थे तो विनोबा ने बीच में ही अपना भाव व्यक्त किया और बोले, "जल ही तो जीवन है।" इसपर जवाहरलालजी ने बड़ा ही अच्छा विनोद किया। वह बोले "हां, दवा में भी तो ९९ प्रतिशत पानी ही होता है।" ये शब्द शायद विनोबा जब बीमार हुए थे और उन्होंने दवा न लेने की जिद की थी तो उसको लक्ष्य करके उन्होंने कहे, ऐसा लगा। विनोबा और आस-पास के सब लोग समझ गये और सभी जोर से हँस पड़े। तब नेहरूजी ने और चर्चा छेड़ी और बाबा से पूछा "आपके भूदान-यज्ञ के क्या हाल हैं ?" बाबा हँसते हुए बोले, "अब तो चार लाख की जगह चालीस लाख की बात करते हैं हम।" उत्तर में नेहरूजी ने भी सरकार की ओर से पूरा सहयोग देने को कहा और इस महान्

संकल्प से प्रभावित और मुग्ध होकर कहा, "इसमें देश का लाभ तो है ही, दूसरी बात यह है कि एक वायुमंडल पैदा हो रहा है ।"

बाबा के पास बैठे बहुत देर तक वह अपनी कहते रहे और उनकी सुनते रहे। बाबा के गंभीर हृदय और स्पष्ट मस्तिष्क का मार्ग-दर्शन लेकर, नई प्रेरणा और शक्ति लेकर वह उठ खड़े हुए । बाबा को आराम करने के लिए कहा और उनसे विदा ली। उत्सुक जनता के जयजयकार से वायुमंडल गूंज उठा। एक कोने में सोया-सा चांदील जाग उठा था। चारों ओर की पर्वतमालाओं ने भी उस जयजयकार की प्रतिध्वनि से हर्षनाद किया। "बाबा को संभाल रखना!" कहते हुए जवाहरलालजी जीप पर सवार होकर जनता के उमड़ते प्रवाह में चल दिये। उस जन-समूह से उन्होंने कहा—"कहो जयहिंद!" और वह समूह भी हर्ष-विभोर होकर नाद कर उठा—जयहिंद !" जमशेदपुर पहुंचकर बाबा ने हृदय के उमड़ते हुए भावों को उड़ेल दिया, और वहां के लोगों को आह्वान किया "मिलकर काम करो !"

जवाहरलालजी चले गये पर बाबा का और उनका यह सुखद मिलन अब भी आंखों के सामने है। बाबा भी कितने खुश थे, भारत के इस लाल को प्रसन्नता से खिला हुआ देखकर। हमसे कहने लगे—"आज जवाहरलालजी बहुत प्रसन्न थे ।" अपने ध्येय को वह क्षण-भर नहीं भूल सकते, एक ज्वाला जो जल रही है निरंतर उनके हृदय में।" तभी तो उन्होंने कहा, "हमने अपने चालीस लाख की बात आज जवाहरलालजी से भी कह दी।" जनता तो टकटकी लगाये हुए है ही। इस सुखद मिलन से जनता को दो महान् आत्माओं का प्रसन्न आशीर्वाद मिला है, जिसमें संतोष और सुख का अपूर्व मिलन है।

एक जमींदार से भेंट

प्रार्थना के बाद हम लोग बाबा के पास बैठे आपस में बातें कर रहे थे। अक्सर इस समय बाबा प्रार्थना में आये हुए विशेष व्यक्तियों आदि से मिलते हैं और सहज चर्चा के रूप में विचार-विनिमय होता है। आज राजस्थान के एक ज़मींदार बाबा से मिलने आये थे। ज़मींदार बड़े थे, अतः देखते और परिचय पाते ही बाबा ने उनसे कहा, "हमें तो माया चाहिए।" और फिर उनका ध्यान राजासाहब के खादी-वेश पर गया तब और भी हँसकर विनोदसहित कहा, "आप खादी पहनते हैं। तब तो हमारा पूरा हक है।" बातों में राजासाहब ने भूदान के काम में लग जाने की अपनी श्रद्धा व्यक्त की और अपना यथाशक्ति सहयोग देने का वचन दिया। यह देखा गया है कि बड़ा हो या छोटा, बाबा के पास जो भी जाता है, वह श्रद्धान्वित हुए बिना नहीं रहता। जो भूमिपति जमींदार अभी इस भूदान से डरते हैं वे विनोबा के पास आते ही नहीं और यदि आते हैं तो इस भूदान-यज्ञ में अपनी आहुति समर्पण किये बिना रहते नहीं हैं और इस संत बाबा के प्रेम का शुभ प्रसाद लेकर ही लौटते हैं। इन निःस्वार्थ, परोपकारी, तपस्वी संत की सहज प्रेममयी सहृदयता का शुभ स्पर्श तो होता ही है, इसमें संदेह नहीं। यद्यपि मन के लोभ और मोह से मुक्त होना आसान नहीं है, फिर भी बाबा की इस समय की मांग में अपना हिस्सा दिये बिना उनका छुटकारा भी नहीं, यह वे अनुभव करने लगे हैं या करते हैं।

राजेन्द्रबाबू की दिनचर्या

जवाहरलालजी की बातों के साथ ही आगे चलकर फिर राजेन्द्रबाबू का और गीता-प्रवचन का जिक्र आया। गीता-प्रवचन

की चर्चा में राजेन्द्रबाबू का स्मरण करते हुए वह कहने लगे, "लक्ष्मीबाबू ने मुझे कहा था कि राजेन्द्रबाबू तीसरी बार गीता-प्रवचन पढ़ रहे हैं और वह यह भी कह रहे थे कि गीता-प्रवचन युग की सर्वोपयोगी पुस्तक है।" फिर मुझसे पूछा, "मालूम होता है, अभी तक राजेन्द्रबाबू को मेरे द्वारा वह पुस्तक नहीं दी गई।" मैंने जवाब दिया, "गीता-प्रवचन 'सस्ता साहित्य मंडल' से प्रकाशित हुई है।* 'सस्ता साहित्य मंडल' से प्रकाशित पुस्तकों में उनकी विशेष रुचि रहती है, और ऑफिस में भी उस संस्था से आई हुई पुस्तकें तुरन्त ही उनके पास पहुंच जाती हैं। हां, बाबूजी स्वयं बहुत व्यस्त रहते हैं। कभी-कभी इच्छा होने पर भी वह अध्ययन के लिए समय नहीं दे पाते। किन्तु गीता-प्रवचन वह नित्य प्रार्थना के समय पढ़ते हैं।" राजेन्द्रबाबू के इस स्मरण में ही बाबा ने उनके अन्य कार्यक्रम, कार्यविधि तथा दिनचर्या आदि के बारे में भी मुझसे पूछा। मैंने उन्हें बताया कि राष्ट्रपति-भवन में रहने पर भी बाबू-जी तो मानो वैसे ही हैं जैसे पहले थे।

नित्य के अनुसार वह ब्राह्म मुहूर्त में उठते हैं, ज़रूरी कागज़ आदि देखते हैं और मनपसंद पुस्तकें पढ़ते हैं। नियमित चरखा कातते हैं। फिर साढ़े सात बजे मालिश करवाते हैं, ८ बजे स्नान आदि के बाद गीता-पाठ करते हैं। यही उनका पूजा-पाठ है। तदनन्तर जलपान आदि करके यदि समय हुआ तो सवेरे अपने स्टेनोग्राफर को बुलाने के बजाय डिक्टाफोन पर ही बोल देते हैं और करीब साढ़े ९ बजे या १० बजे नीचे आफिस में चले जाते हैं। वहां सरकारी कार्य और मुलाकात आदि में वह व्यस्त हो जाते हैं।

---

* अब गीता-प्रवचन का प्रकाशन 'सर्व सेवा संघ' द्वारा होता है।

एक या सवा बजे भोजन के लिए जाते हैं और फिर दो से तीन तक उनका विश्राम का समय होता है। इसी समय वह इच्छानुसार अखबार आदि भी देख लेते हैं। पुनः चार बजे ऑफिस में आ जाते हैं और पूर्व-निश्चित कार्यक्रम के अनुसार मुलाक़ात, सरकारी कार्य आदि में व्यस्त रहते हैं। शाम को सुविधानुसार कभी बाहर घूमने जाते हैं या कभी मुग़ल-उद्यान में ही घूमते हैं। उनके सरल और सौजन्यमय स्वभाव से उनके आसपास रहनेवाले कर्मचारियों में भी उनके लिए प्रीतिपूर्ण समादर और श्रद्धा की भावना है। वह स्वयं श्रद्धा और भक्ति की प्रतिमूर्ति हैं। छोटे-से बड़े तक सबके हृदय में उनके लिए श्रद्धामय प्रेम है।

कभी-कभी आते-जाते, मैं कइयों को कहते हुए सुनती भी हूं "हमारे राष्ट्रपति तो साधु हैं।" बाबा भी तो इस साधु पुरुष को उसी स्नेह सौजन्यमय भाव से याद करते हैं। जब भी वह उनका स्मरण या चर्चा करते हैं, ये भाव मैं उनकी व्यक्त वाणी में हमेशा देखती हूं। उनके जीवन से परिचित होने पर भी इस दिनचर्या आदि को जानने की उन्हें उत्सुकता रही, यह भी उनके प्रेमभाव की ही एक अभिव्यक्ति है।

हमारी इस छोटी-सी मंडली में यहां के एक साधुबाबा भी थे। वह भी बड़े ही सरल और उच्च कोटि के विद्वान् हैं। उनकी सज्ज-नता और विद्वत्ता से बाबा भी प्रभावित हुए हैं। वह आजकल रोज महादेवीताई को बंगला पढ़ाते हैं। आज साधुबाबा और ताई को अपने पास बैठे देखकर बाबा ने ताई से पूछा, "क्यों, आज छुट्टी की है क्या ?"

भाषा का विषय चल रहा था और उस चर्चा में साधुबाबा ने अनेक भाषाओं का बड़ा सुन्दर विवेचन किया, जिसमें विनोबा

बड़ा ही रस ले रहे थे। महादेवीताई को उन्होंने नियमित रूप से सीखने का गुण बताते हुए एक उदाहरण दिया, "जब मैं छोटा था तो मेरी मां रोज मुझे तुलसी में पानी देने को कहती थी। तुलसी में पानी दिये बिना मुझे कुछ खाने-पीने को नहीं मिलता था। वह पूछती थी, 'का रे विन्या, तुलसीला पाणी घातलेका ?' (क्यों विन्या, तुलसी में जल दिया क्या ?) छोटा-सा काम था, पर इससे मुझमें भक्ति-भाव भी आया। नित्य-नियमित रूप से थोड़ा और छोटा-सा काम करने पर भी जीवन पर उसका बड़ा असर होता है।"

बाबा के खाने का समय हो गया था। उनका भोजन याने एक नया प्रयोग, ऐसा मानें तो शायद ग़लत न होगा। तभी तो प्रभाकरजी से कहने लगे, "पंद्रह बरस के इन प्रयोगों को लिखें तो एक शास्त्र ही तैयार हो जाय, और फिर वह शास्त्र केवल अध्ययन-मनन से नहीं, अनुभव और प्रयोग के आधार पर होने की वजह से ज्यादा महत्त्वपूर्ण और यथार्थ होगा।" इस प्रकार कुछ देर तक आहारादि के अनेक प्रयोग, उसके गुण-अवगुण, किस आहार में क्या चीज़ अधिक कम, किसमें कितनी कैलोरी आदि हैं, इस विषय पर वार्ता होती रही और अपना भोजन समाप्त करके जब बाबा अध्ययन में लग गये तो हम सब भी वहां से उठ खड़े हुए और अपने कार्य में लगे।

रविवार; २२ फरवरी '५३



: १६ :

भूदान का विदेशों में प्रभाव

मानभूम जिले के भूदान-कार्य के सम्बन्ध में बातें करने एक कार्यकर्त्ता आये थे। वह यहां से एक व्यक्ति को अपने साथ पांच-सात दिन के लिए ले जाना चाहते थे। विनोबा ने अपनी मंडली के सभी साथियों को, अपने सेक्रेटरी श्री दामोदरदास मूंदड़ा आदि को भूदान के काम के लिए गया भेज दिया है, इसीलिए उन्होंने कई बार कहा भी कि मैंने तो अपने साथ के सबको भेज दिया है, केवल कमज़ोर को सिखाने के लिए अपने पास रक्खा है। और जिस जगह के लिए वह एक कार्यकर्त्ता की मांग कर रहे थे वहां की स्थिति में किसी प्रभावशाली व्यक्ति की ज़रूरत थी। विनोबा ने कहा भी, "वहां कोई वज़नदार आदमी जाना चाहिए।" आखिर इसकी जिम्मेवारी उन्होंने श्री लक्ष्मीबाबू पर छोड़ी।

प्रातःभ्रमण के समय आज हमारे साथ एक अमरीकी भाई, जिनका नाम मि० रे० जेड० मेगी था और जिन्होंने इस भूदान की चर्चा अमेरिका में ही सुनी थी तथा जो इससे बहुत प्रभावित हुए थे, साथ थे। वे विनोबा से इस बारे में विस्तार से बातें करके अपनी उत्सुकता का निवारण करना चाहते थे। इस संत पुरुष के प्रति अपना आदर-भाव प्रकट करके उनके दर्शन-लाभ की उत्कण्ठा तो उनके मन में थी ही।

अमेरिका में प्रभाव

भ्रमण से लौटते समय विनोबा ने उनसे बातें शुरू कीं। यह भाई सेवाग्राम (वर्धा) होकर आये थे। अतः सबसे पहला प्रश्न

बाबा ने उनसे यही किया, "सेवाग्राम में आपने क्या देखा ?" सेवाग्राम में स्थित विविध संस्थाओं, जैसे तालीमी संघ, खादी-विद्यालय आदि का जिक्र करते हुए वहां जो कुछ श्री मेगी ने देखा था, कह सुनाया। सेवाग्राम की प्रवृत्तियों में आज तालीमी संघ का महत्त्व और विस्तार बहुत बढ़ गया है, जिसका बहुत ही खूबी के साथ संचालन स्नेह, ममता और सेवा की प्रतिमूर्ति हमारी आशादी[१] करती हैं, और इस बड़े परिवार की सेवा में वैसा ही पूर्ण सहयोग है सेवाभावी श्री आर्यनायकम् का। श्री मेगी आशादी के कार्य और उनकी लगन से बहुत ही खुश और प्रभावित हुए थे। उनकी इस प्रशंसा को सुनकर बाबा ने भी कहा, "हां, आशादेवी वहां की जीवनमयी जाग्रत प्रेरणा हैं।" इसके बाद भूदान आदि के सम्बन्ध में बातें हुईं, जिसे मैं यथाशक्ति ज्यों का त्यों नीचे दे रही हूं। इससे पहले मैं अपने दो शब्द भूदान-यज्ञ के इस बढ़ते हुए आकर्षण के बारे में कहूं तो शायद असंगत न होगा। ये विचार मेरे मन में श्री मेगी की इस उत्सुकता को देखकर ही उठे और यही नहीं, समय-समय पर विनोबा के पास विदेशों से कई भाई-बहनें उनके इस नये तरीके या नये प्रयोग को देखने आते हैं और इस नई सूझ को देखकर उसका जो क्रियात्मक प्रयोग, अनुभव और प्रभाव देश की स्थिति सुधारने में है, उसका दर्शन करके दंग रह जाते हैं।

वह देखते हैं कि आज विनोबा एक क्रान्तिकारी विचारधारा को क्रियात्मक रूप देने में संलग्न हैं। जिस अहिंसा के सिद्धांत को राजनीति में गांधीजी ने उतारा, उसे ही आर्थिक क्षेत्र में विनोबाजी

---

[१] श्रीमती आशादेवी आर्यनायकम्

प्रस्तुत कर रहे हैं। उनका भूदान-आन्दोलन, जिसे प्रारंभ में लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे, अब भू-वितरण-समस्या का उपयुक्त हल माना जाने लगा है। भूदान के लिए गांव-गांव में पैदल-यात्रा करते हुए इस अनुपम तपस्वी के प्रयासों का सफल परिणाम अभी से हमें प्रचुर मात्रा में प्रतीत होने लगा है। यह कहना संभवतः मुश्किल हो कि अहिंसा के अमूल्य सिद्धान्त अथवा विनोबा-जैसे व्यक्ति की निष्ठा एवं सतत कर्म-परायणता में से किसको भारत की भूमि-समस्या के इस शान्तिपूर्ण हल के लिए अधिक श्रेय दिया जाय।

इतना ही नहीं, उनकी इस शान्तिमय क्रान्ति के प्रति विदेशों में भी लोगों का ध्यान आकृष्ट हो रहा है। यहां बाहर से आये हुए लोग इस अभिनव प्रयास का निकट से दर्शन करने और उसकी सूक्ष्म जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। यदि यह प्रयास सफल हुआ, और इसके असफल होने का तो कोई प्रश्न ही खड़ा नहीं होता, तो यह विश्व के सम्मुख भारतवर्ष के अहिंसात्मक प्रयोग का एक दूसरा प्रकरण या पहलू उपस्थित होगा।

इसी प्रकरण की कहानी विनोबा से सुनने के लिए और इस आन्दोलन को देखने के लिए ही श्री मेगी अमेरिका से यहां आये। उन्होंने इस विषय में विनोबाजी से बातें कीं और बिहार में इसका क्रियात्मक संचालन भी देखा। बाबा से उनका जो वार्तालाप हुआ उसका कुछ अंश यहां उद्धृत करती हूं। इससे प्रकट होता है कि विदेशी विद्वान इसमें कितनी रुचि रखते हैं और वे इससे कितने प्रभावित हैं। इसके साथ ही निम्न वार्ता इस बात पर भी प्रकाश डालती है कि स्वयं आचार्य विनोबा के कथनानुसार अन्य देशों में भी इस विधि द्वारा लाभ उठाया जा सकता है।

श्री मेगी से चर्चा

विनोबा के सहज रूप से एक-दो प्रश्न पूछने के बाद श्री मेगी ने प्रश्न किया, "क्या लोगों का आपके कार्यकर्त्ताओं पर इतना विश्वास है कि उन्हें भी वे भूमि प्रदान करते हों ?"

विनोबा ने कहा, "हां, अब मेरे दो वर्ष तक अकेले कार्य कर चुकने के बाद ऐसा वातावरण बन गया है। अब तो अन्य लोग भी भूमि प्राप्त कर लेते हैं। इतना अवश्य है कि कार्यकर्त्ता ऐसे होने चाहिए, जिनपर लोग सही रूप से विश्वास कर सकें।"

श्री मेगी—"वास्तव में यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात है कि लोग विना किसी प्रकार के दबाव या बेबसी के भूमि प्रदान करते हैं।"

विनोबा—"हां, यह हमारे भारत देश की ही एक विशेषता है, अन्य किसी भी देश में ऐसा होता नहीं देखा गया। हमने कभी भूमिदान के लिए दबाव नहीं डाला और फिर भी हमें भूमि प्राप्त हो रही है। मैं लोगों से इस विषय में यह युक्ति रखता हूं कि एक परिवार में औसतन यदि पांच व्यक्ति हैं तो मुझे छठा मान लिया जाय। मैं उनसे कहता हूं कि मैं एक नया वारिस उनकी जायदाद में हिस्सा बंटाने के लिए उत्पन्न हो गया हूं और मुझे भूमिहीनों को वितरण के हेतु मेरा भाग दे दें। इस प्रकार मेरा प्रयत्न यह है कि लोगों के हृदय-परिवर्तन द्वारा मैं उनकी जीवन-शैली में परिवर्तन ला सकूं और इस प्रकार हमारे सामाजिक ढांचे में आमूल सुधार हो सके। मैं केवल भूमि के पुर्नवितरण को ही अपना लक्ष्य नहीं मानता, अपितु मैं चाहता हूं कि इसके साथ ही उद्योग और शासन दोनों में ही विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को अपनाया जाय।"

श्री मेगी—"क्या आप आगे किसी अवस्था पर सरकार से

भी आशा करेंगे कि वह कानून में इस सिद्धान्त को स्थान दे ? सरकार से आप किस प्रकार के सहयोग की आशा करते हैं ?

विनोबा—"सरकार की इसमें अत्यधिक रुचि है और हमें उसका पूरा सहयोग प्राप्त है। अहिंसा का अर्थ कानून का बहिष्कार नहीं है, अपितु कानून के पीछे जनमत का प्रभाव होना चाहिए। मेरी योजना के अनुसार कानून को अन्त में ही अपनाया जाय। जब लोग इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था को सही तौर पर समझ जायंगे तो कानून को भी अपनाया जा सकता है; किन्तु पहली बात जन-मत पैदा करने की है और तब सरकार को उसके अनुसार कार्य करना ही होगा। प्रजातंत्र राज्य की नींव जनमत पर ही आधारित रहती है।"

श्री मेगी—"आप गरीब लोगों से भी भूमि क्यों मांगते हैं ?"

विनोबा—"हां, साम्यवादी लोग भी मुझसे यही प्रश्न करते हैं। मेरा कहना है कि यदि निर्धन व्यक्ति भी भूमिदान करते हैं तो यह बड़े जमींदार और भूपतियों के लिए एक अत्यधिक प्रेरणात्मक वस्तु होगी। इससे एक विशेष वातावरण उत्पन्न होगा। ऐसे निर्धन दानी ही हमारे सच्चे कार्यकर्त्ता या सैनिक होंगे।"

श्री मेगी—"क्या आपको ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य देशों में भी इस आन्दोलन का प्रचार हो रहा है ?"

विनोबा—"निस्संदेह; यदि हम यहां सफल होते हैं तो अन्य देश भी इसे अपना सकेंगे। मिस्र और मध्यपूर्व इसमें विशेष रूप से रुचि दिखा रहे हैं।"

इसके पश्चात् अमेरिका के विषय में विनोबा ने उनसे कहा, "मेरे विचार से अमेरिका में कोई भूमि-समस्या नहीं है। आज अमेरिका इस दशा में है कि वह विश्व-शान्ति के हेतु अपने प्रयत्नों

में सफल हो सके, किन्तु वहां की समस्या उसकी 'भय-ग्रन्थि' है। जनता आज शान्ति की ओर ताक रही है जबकि आपका देश युद्ध की तैयारियों में व्यस्त है।"

अपने निवासस्थान वापस पहुंचने तक यही वार्तालाप हुआ। आज हमारी घूमनेवालों की इस छोटी मंडली में श्री कृष्णदासजी (सर्व-सेवा संघ के एक कार्यकर्ता जो सेवाग्राम में रहते हैं) की सात वर्षीया लड़की मीरा भी थी। वह बड़ी ही चपल और उत्साही बालिका है। बालक बड़े-छोटे सबके मन का मधुर और भोला आकर्षण होता है तथा उसकी चंचलता, चपलता और भी मनोहारी होती है। संत साधु भी बाल-साथी के साथ खेलना पसंद करते हैं। बापू बच्चों के 'प्यारे बापू' थे। बापू तो बापू थे ही, पर यह ब्रह्मचारी संत योगी भी बच्चों के बड़े अच्छे प्रिय बाबा हैं। सात वर्ष की यह मीरा चपलता के साथ चलने में बड़ों की होड़ कर रही थी और आगे-आगे दौड़ती-कूदती चल रही थी। सचमुच ही बड़ी अच्छी और बहुत उत्साही लड़की है। बाबा उसे देखकर प्यार से बोले, "देखो, यह इतनी छोटी लड़की सुबह चार बजे उठती है, सुबह की प्रार्थना चार बजे होती है, जिसमें यह शामिल होती है। सूत कातती है, घूमने आती है। मालूम नहीं, हम इतने बड़े थे तो क्या करते थे।" फिर उसकी ओर हमारा ध्यान दिलाते हुए उन्होंने फिर कहा—"यह हमारा 'नव भारत' है!"

बाबा का स्वास्थ्य और आहार

आज घूमते समय बाबा की गति तेज थी। उन्हें धीमे चलने को जब मैंने कहा—क्योंकि डाक्टर ने इतना तेज चलने को मना किया है—तो कहने लगे कि आज तो मैं दौड़ भी सकता हूं। कारण बताते हुए उसका विवेचन करने लगे, "रोज मैं घूमने से कुछ पहले

ही खाता हूं, पर आज काफी देर पहले ४ बजे ही खा लिया। बाबा इस समय दही-दूध मिलाकर लेते हैं। तो दो घंटे में सब हजम होने आया, इसलिए पेट हल्का है और चलने में स्फूर्ति है।" इस प्रकार उनकी इसी तेज रफ्तार के साथ चलते हुए हम ९६ मिनिट में ही पांच मील एक फर्लांग का चक्कर लगाकर वापस पहुंच गये।

बाबा का वजन अब ९१ पौंड है। वजन में थोड़ी-सी प्रगति देखकर संतोष तो नहीं, खुशी अवश्य होती है। पर ऐसा लगता है, बाबा को इससे पूरा संतोष है। तभी वह कहते हैं, "इसी तरह बढ़ा तब तो अच्छा है।" शहद और गरम पानी के नाश्ते के बाद दो-चार मिनट उनके पास ठहरकर जब बाबा अध्ययन-चिंतन में लगे तब हमें भी अपने खाली पेट को तृप्त करने की सूझी।

रात को जब बाबा भोजन कर रहे थे तो मैं भी उनके पास जा बैठी। प्रभाकरजी और महादेवीताई भी वहां थीं। भोजन के समय अक्सर बाबा अपने भोजन के प्रयोगों की ही चर्चा करते हैं। आज कहने लगे "खिचड़ी के बाद दूध लेना अनुकूल पड़ता है, ऐसा लगा।" फिर उन्हें अपने गले का ख्याल आया। उनका गला कुछ खराब हो गया है, उसके कारण ही दही का प्रयोग कुछ कम किया है। वह हँसकर बोले "हमारा गला बहुत सात्त्विक है, ज़रा-सा भी अम्ल सहन नहीं करता। किन्तु पेट तो राजस है।"

भोजन खत्म हुआ, बातें भी खत्म हुईं। बाबा ने किताबें-उठाईं अपने अध्ययन-मनन में लगे। हम भी उठ आये और अपने-अपने काम में लगे।

सोमवार; २३ फरवरी '५३

: १७ :

भूदान और आध्यात्मिक दृष्टिकोण

मंगल भावों से भरा हृदय जीवन को भी मंगलमय बना देता है। मानव की हर कृति मंगलमय जीवन के इन मंगलमय भावों से ओतप्रोत होकर, कल्याणमय बन जाती है, यह मैं ब्रह्मवेला में प्रार्थना-मन्दिर में प्रातःवन्दना करती हुई इस भक्त-संत के समीप बैठकर अनुभव करती हूं। संत-सन्निधि का माहात्म्य अभी तक पढ़ा और सुना बहुत था; पर इसका प्रत्यक्ष अनुभव इस समय की बीतती हर घड़ी में मैं कर रही हूं। दिन का आरंभ इन संत बाबा के दर्शनों से होता है। ब्राह्म मुहूर्त की नवचेतना के साथ यह पुण्य दर्शन तन-मन में नवस्फूर्ति भर देता है।

विनोबा नित्य प्रातःकाल ३ बजे उठ जाते हैं और उठकर बिस्तर पर ही नहीं रहते, अपने आसन पर आ जमते हैं। जिस समय सब सोये होते हैं यह मुनि जागता है। कभी-कभी श्रुतिमंत्रों के मधुर स्तुति-गान की गूंज मेरे कानों में भी पड़ती है और दूर बैठी ही मैं अनुभव करती हूं मानो मैं अमृत-पान कर रही हूं। विनोबा की वाणी भी बड़ी ही मीठी है और है भक्ति से परिपूरित। इसीलिए ब्राह्म मुहूर्त के इस नीरव शान्त वातावरण में जब वह श्लोकों का गान करते हैं, तब उनके स्वर वीणा के सुमधुर स्वरों के समान गूंज उठते हैं। जो भी इसे सुनता है, आनन्द-मग्न हो जाता है।

साढ़े चार बजे की प्रार्थना के बाद सूत्रयज्ञ होता है और फिर पौ फटते ही, याने प्रकाश फैलते ही, बाबा घूमने के लिए निकल

पड़ते हैं। बाबा की घूमने की घड़ी की ओर मेरी भी हर-घड़ी नजर रहती है; क्योंकि वह ठीक समय पर बिना किसी की राह देखे चल पड़ते हैं। उनके साथ घूमने का यदि एक भी अवसर चूका तो ऐसा लगता है मानों अमूल्य संपदा लुट गई हो, इसीलिए सदा सतर्क रहना पड़ता है। यही नहीं, यदि चूके तो नहीं लेकिन अलसा गए तो फिर सारे रास्ते तूफानमेल को पकड़ने के लिए दौड़ना ही पड़ता है। तभी तो कभी चूक जाने पर बाबा खुद ही मजाक करते हैं, "आज गाड़ी छूट गई।" अपने घूमने की गति के लिए भी बाबा समय के प्रति-मिनट व प्रति-सैकण्ड की गणना करते हैं।

आज भी घूमते समय, समय और गति की बात चल रही थी कि साधारणतः बापू की प्रति-मील २० मिनट की गति थी और बाबा की १८ मिनट की है। तभी मैंने विनोबा से कहा, "आप तो बिल्कुल बच्चों की तरह चलते हैं।" इसपर बोले, "हां, मैं हल्का हूं न!" और बापू की याद करके फिर कहा, "बापू की कुछ बातों में मुझसे साम्यता है और कुछ में नहीं।" बापू भी तेज चलते थे और बाबा भी तेजी के साथ चलते हैं; पर बापू लम्बे-लम्बे डग भरते थे और बाबा के कदम बच्चों की तरह छोटे-छोटे और जल्दी-जल्दी उठते हैं।

अध्यात्मचर्चा

श्री मेगी ने फिर कुछ प्रश्नों द्वारा भूदान के विषय में विनोबा से अधिक जानकारी प्राप्त करनी चाही। श्री मेगी स्वयं धर्मप्रिय श्रद्धालु व्यक्ति हैं, और आज उन्होंने विशेषतः धार्मिक दृष्टिकोण से भूदान व सर्वोदय की उनकी हिन्दूधर्म की पृष्ठभूमि को लेते हुए वार्ता की। "विशेष रूप से भूदान के नैतिक दृष्टिकोण को लेते हुए उन्होंने विनोबा से पूछा, "लोग अपनी सांसारिक समस्याओं

को सुलझाने में पारस्परिक सहयोग एवं दूसरों की सहायता पर इतना ध्यान दे रहे हैं, क्या इससे ऐसा नहीं लगता कि यह हिन्दू-धर्म के मूल विचार के विरोध में है, जिसके द्वारा यह पाठ सिखाया जाता है कि यह सब माया है और हमें परिणाम का विचार किये बिना ही कर्म करते रहना चाहिए ?"

विनोबा ने कहा, "ठीक है; माया के सिद्धान्त द्वारा हमें अनासक्ति का यह पाठ मिलता है कि किसी भी प्रकार का संग्रह सर्वथा निस्सार है।"

श्री मेगी—"यदि आप माया के सिद्धान्त को अपनी योजना के लिए इस प्रकार घटाते हैं तो यह कहना भी निर्थरक-सा लगता है कि हमें लोगों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता देनी चाहिए।"

विनोबा—"हम उनकी आवश्यकता के लिए नहीं, अपितु अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अर्थात् अपनी उन्नति के लिए उनको सहायता देते हैं। अपनी उन्नति का मेरा मतलब यहां परार्थ के लिए किये गए कर्म और उससे प्राप्त आत्मसंतोष से है।"

श्री मेगी—"क्या आपका विश्वास है कि जनता-जनार्दन के अतिरिक्त कोई रहस्यमयी ईश्वरीय सत्ता भी है ?"

विनोबा—"हां, मेरा ऐसा ही विश्वास है।"

श्री मेगी—"क्या सर्वोदय के सिद्धान्तों में आप कार्यकर्त्ताओं के सम्मुख मौन विचार-चिन्तन पर भी जोर देते हैं ?"

विनोबा—"हम प्रार्थना दो मिनिट के मौन से प्रारम्भ करते हैं। कताई में बच्चे तक भी मौन रहते हैं और उसे हम कताई-यज्ञ या सूत्रयज्ञ का नाम देते हैं। मैं स्वयं रात्रि के आठ बजे से प्रातः चार बजे तक मौन रहता हूं और सूर्यास्त से पूर्व ही अपने दैनिक

कार्यों को समाप्त कर देता हूं। उसके पश्चात् किसी प्रकार की वार्ता या भाषण नहीं करता। वैसे हमारे देश में रात्रि के समय वार्ता आदि की प्रथा है, किन्तु मैं इस विषय में अपने पर नियंत्रण रखता हूं। पिछले पच्चीस वर्षों से मैं ऐसा करता आ रहा हूं और इसीका प्रभाव है कि मेरी निद्रा प्रायः स्वप्नरहित ही रहती है। स्वप्नकाल में अनेक प्रकार की वासनाओं और चिन्ताओं से मुक्त रहने के लिए भी यह मौन साधना अत्यन्त उत्तम है। मेरा तो निजी अनुभव ऐसा ही है।''

अन्त में श्री मेगी ने विनोबा से पूछा, ''अमेरिका में कुछ लोग हैं, विशेषतः नवयुवक, जो यहां भारतवर्ष में परोपकार के कार्य करना चाहते हैं। आपके विचार से क्या मैं भी इसमें कुछ सहयोग दे सकता हूं ?''

विनोबा ने उनका समर्थन किया और उन्हें गया जाकर श्री जयप्रकाश नारायण और अपने निजी सचिव श्री दामोदरदास मूंदड़ा से, जो वहां भूदान-यज्ञ का संचालन कर रहे हैं, मिलने की सलाह दी और प्रत्यक्ष रूप से भूदान के कार्य को देखने के लिए कहा।

श्री मेगी के मुख पर श्रद्धा के भाव स्पष्ट थे। उनकी बातों से ज्ञात होता था मानो उन्हें एक नई सेवा-दृष्टि मिली है। जिस उलझन को वह दूर करने आये थे, वह विनोबा से वार्तालाप करने के बाद पूर्णतया सुलझ गई है और उनके संसर्ग व निकट-परिचय से एक नया जीवन उन्होंने पाया है।

विनोबा के व्यवहार और बातों से वह बहुत ही खुश हुए और अपनी खुशी व्यक्त करते हुए वह मुझसे कहने लगे, ''तुम इस मंडली में शायद सबसे ज्यादा भाग्यवान हो कि तुम्हें

आचार्य विनोबा का इतना निकट-सान्निध्य ही नहीं, उनका प्रेम भी प्राप्त है।" विनोबा के जीवन के विषय में उन्होंने बहुत ही जिज्ञासा-भाव से कई प्रश्न किये और मैंने यथाशक्ति उन्हें सन्तुष्ट करने की कोशिश की।

फोटो, श्री भंसाली और नीम के पेड़

कुछ दूर आगे जाकर वह जल्दी-से दौड़कर अपना कैमरा ठीक करने लगे। बाबा का चित्र लेने का लोभ वह कैसे संवरण कर सकते थे! हम तो बाबा के साथ चलते ही जाते थे और वह किसी भी तरह बाबा का चित्र लेने का यत्न कर रहे थे। बाबा चित्र देने के लिए कभी स्थिर नहीं होते। एक बार जब उन्हें इसके लिए स्थिर होने को कहा गया तो मजाक में उन्होंने कहा था कि फोटो लेना चोरों का काम है। तुम वैसे लुक-छिपकर ले सको तो ठीक है, नहीं तो समझो, कुछ हाथ नहीं आयगा। इसीलिए वह भाई आगे दौड़कर अपने कैमरा को ठीक करते थे कि बाबा ही इतनी देर में उनतक पहुंच जाते। तीन-चार बार जब उनके इस प्रयत्न को विफल होते हमने देखा और बार-बार उन्हें आगे-आगे दौड़ते पाया तो बाबा खूब हँसे। हँसते हुए ही बाबा ने श्री मेगी से पूछा, "आपके देश में ऐसे शौकीन फोटोग्राफर कितने हैं?" उन्होंने भी हँसकर कहा, "बहुत सारे।" इसी प्रसंग में प्रभाकरजी ने भंसाली भाई का, जिन्होंने अपने जीवन में एक बार नीम की पत्तियां खाने का प्रयोग किया था, एक विनोदपूर्ण किस्सा सुनाया कि एक बार बापू ने उनसे पूछा, "आपने कितनी नीम की पत्तियां खाई हैं?" उन्होंने तब कहा था, "कुछ पेड़"

लौटते समय बीच रास्ते में सामने से आते हुए श्री चेरियन् दिखाई दिये। जब वह पास पहुंचे तो बाबा ने कहा, "आज आपने

देर कर दी।" उन्होंने अपनी देरी का कारण बताया कि वह पानी भरने की ड्यूटी पर थे। अपनी ड्यूटी पूरी करके जो भी थोड़ा समय बचा था, उसका लाभ उठाने के खयाल से ही यहां चले आये, ताकि लौटते समय ही सही, कुछ दूर बाबा का साथ मिल जायगा। बाबा ने सुनकर संतोष के साथ कहा, "ओः, यह बात है तब तो ठीक है।" फिर बोले, "आप दो बरस बनारस में रहे और फिर भी हिन्दी नहीं सीख सके।" कुछ संकोच के साथ शर्माते हुए उन्होंने जवाब दिया, "हां, यह तो हमारी गलती है।" बाबा ने फिर उनसे मलाबार में भूदान-कार्य के सम्बन्ध में कहा, "मलाबार में हमें कुल जमीन का छठा हिस्सा चाहिए, उसे कौन पूरा करेगा ?" उत्साह के साथ श्री चेरियन् ने जवाब दिया कि "हमें करना चाहिए।" तब बाबा उन्हें प्रेरणा देते हुए उनके बारे में ही कहने लगे, "यह अभी अमेरिका से आये हैं, अमेरिका के अनुभव नये हैं और भूमिदान के भी नये हैं। इन नये अनुभवों और नये उत्साह से इस काम में इन्हें लग जाना चाहिए। उत्साही युवक हैं और लगन के साथ इस यज्ञ में लग जायंगे तो काम काफी अच्छा होगा, ऐसी मेरी आशा है।" और सचमुच ही बाद में बाबा की पुण्य प्रेरणा से उन्होंने इस भूदानयज्ञ में पूरा समय देने का और पूरी शक्ति के साथ उसमें जुट जाने का निश्चय कर लिया।

बालक-जैसी सरलता

कुछ देर हम लोग चुपचाप चले और फिर कुछ बात छिड़ते ही बाबा ने मेरी पहली बात को लक्ष्य करके कहा, "यह लड़की कहती है, मैं बच्चों-जैसा हूं।" तब प्रभाकरजी हँसते हुए बोले, "पर बच्चे खाते बहुत हैं, उन्हें संभालना कठिन होता है।" उन्होंने यह

विनोबा की अत्यधिक कम खुराक को ध्यान में लाने के लिए कहा था। मैंने बाबा से कहा, "संभालना तो आपको भी कठिन है ही, क्योंकि आपकी हर कृति बाल-सदृश है।" विनोबा बोले कि "हां, वैसा है तो।" और सच ही कभी-कभी बिल्कुल बच्चों की तरह ही उन्हें हाथ पकड़कर रास्ते से हटाना पड़ता है या रास्ते पर लाना पड़ता है। कभी घूमते समय जब उनका हाथ पकड़कर मैं उन्हें एक तरफ को करती हूं, तब मुझे अपने बालक राजीव की याद आती है।

रास्ते में शायद किसी को सिर में तेल मालिश कराते हुए देखकर बाबा विनोद में कहने लगे, "तेल का उपयोग आजकल सिर में लगाने में अधिक होता है और इसीलिए अब खाने को कम मिलता है।" इस प्रकार चर्चा करते-करते हम निवास पर पहुंच गये।

दोपहर को तीन बजे जब मैं कुछ काम लेकर बाबा के पास गई तब काम के बारे में कुछ बातें करने के बाद नाश्ता करते-करते वह अपनी खुराक का विश्लेषण करने लगे। उसी समय दो बूढ़ी स्त्रियां दर्शनार्थ आई थीं। बाबा का दर्शन करके वे गद्गद हो गईं। इतनी बूढ़ी होते हुए भी केवल बाबा के दर्शनों के लिए ही आठ-दस मील पैदल चलकर यहांतक पहुंची थीं और फिर भी उन्हें मन में यह असंतोष रहा कि वे कुछ फल-फूल बाबा को भेंट न कर सकीं। उनकी श्रद्धा देख हम सभी गद्गद हो गये। बाबा ने भी बातों में हमसे कहा, "कितनी श्रद्धावान् हैं ये!"

समझाने की सरल पद्धति

बाबा कुछ श्लोक पढ़ रहे थे। मैं और महादेवीताई उनके पास बैठी थीं। अक्सर मैंने देखा है कि जब बाबा इस तरह श्लोक

पढ़ते हैं तब यदि हम लोग उनके पास होते हैं तो उनका कुछ विश्लेषण और विवेचन भी करते हैं। वह इस तरह समझाते हैं मानों बच्चों को पढ़ा रहे हों। इसका एक कारण यह भी है कि वह एक उत्तम शिक्षक रह चुके हैं। जब वह एक श्लोक की व्याख्या कर रहे थे तो उसे सुनने पर मैंने कहा, "आपकी समझाने की शैली इतनी सरल और सीधी होती है कि शंकराचार्य के ये सूत्र या श्लोक आपके समझाने से बच्चे भी समझ सकते हैं और इतना गंभीर विषय भी कहानी-जैसा रसमय बन जाता है।" यही तो उनके उत्तम शिक्षक होने की खूबी है कि गंभीर से-गंभीर विषय में भी, मानो कहानी सुन रहे हों, इस तरह का रस और आनन्द वह भर देते हैं।

रात को तालीमी संघ, वर्धा के उत्तर-बुनियादी वर्ग के कुछ विद्यार्थी बाबा के पास आये थे। शिक्षण आदि के विषय में ही उनसे बातें हुईं। इसी विषय पर बात करते हुए जब विद्यार्थियों ने बताया कि संगीत, कला आदि विषय व्यक्तिगत हैं, जिनमें विद्यार्थी विशेष रूप से प्रवीणता प्राप्त करते हैं, किन्तु साहित्य विषय सबके लिए है। ये सब बातें सुनने के बाद बाबा ने विनोदपूर्वक कहा, "इनके ऊपर शिक्षक हैं या ये स्वयं शिक्षक हैं?"

इसी प्रकार पूर्व-बुनियादी तथा उत्तर-बुनियादी शिक्षा-पद्धति पर कुछ देर बातचीत होती रही। विद्यार्थियों से बातें करके बाबा को संतोष हुआ। ये विद्यार्थी शिक्षा की इस नई पद्धति को अपना रहे हैं। बापू के प्रयोग का ही यह एक नमूना है। इसमें विद्यार्थी किसी एक विषय में पूर्ण प्रवीणता और कुशलता प्राप्त करके अपने भावी जीवन के लिए नौकरी नहीं खोजता, बल्कि अपने ही हुनर के द्वारा जीविका उपार्जन कर सकता है। इस

शिक्षा-पद्धति से ग्रामोद्योग को भी बल मिलता है। असल में जीवन की असली शिक्षा वही है, जो हममें आत्मनिर्भर हो जाने की क्षमता पैदा कर सके।

बातों का क्रम जारी था कि भोजन की घंटी बजी। मैं उठकर भोजन के लिए गई। भोजन के बाद भी कुछ काम करती रही। बाबा भी साढ़े आठ बजे के करीब सो गये थे।

मंगलवार; २४ फरवरी '५३



: १८ :

'देव बलात्कार' तथा अन्य विचार

प्रातःकाल जब हम लोग घूमने निकले तो छोटे पक्षियों के कलरव के साथ कौओं का काकारव भी सुनाई दिया। इस काकारव को सुनते ही विनोबा के मुंह से एक श्लोक निकल पड़ा——

> "यदन्तः खेलन्तो बहुलतर संतोष भरिता,
> न काकाःनाकाधीश्वर नगर साकांक्ष मनसः।
> निवासांल्लोकानां जनिमरण शोकापहरणम्,
> तदेतत्ते तीरं श्रम श्रमणधीरं भवतु नः॥"

(जगन्नाथ पंडित-कृत 'गंगालहरी' से)

इसका अर्थ बताते हुए वह बोले कि गंगा के किनारे के कौए इन्द्रपद भी नहीं चाहते हैं। वे तो अपने में ही मस्त रहते हैं। देखो, ये कौए भी कितने मस्त हैं!

पुनः मौन-चिन्तन करते हुए बाबा आगे चले। अक्सर घूमते हुए जाते समय बाबा मौन चलते हैं, क्योंकि डाक्टर ने उन्हें कम बोलने को कहा है; पर वापस लौटते समय वह कुछ-न-कुछ चर्चा करते ही हैं और उनके सुन्दर विचार हम पाते हैं। प्रातःकाल के उनके इन विचारों का यदि ठीक तरह से कोई संग्रह करे तो वह सचमुच ही जीवन में एक अमूल्य निधि का संचय कर सकता है। इसके अतिरिक्त घूमते समय चर्चा, विचार-विनिमय करने से समय का भी उपयोग होता है। इसी कारण एक दिशा में मौन रहकर डाक्टर के आदेश का वह आधा ही पालन करते हैं। सुबह-सुबह

बाबा से यह जो सात्त्विक भोजन हम पाते हैं, उससे हमारी आत्मा को जो पोषण और बल मिलता है, वह लाभ तो अमोल और अतोल है ही। उनके साथ घूमते हुए लम्बा रास्ता भी मालूम ही नहीं होता कि कब तय हो गया।

जब हम लौटने को हुए तब बाबा ने समय पूछा। मैंने घड़ी देखकर बताया कि साढ़े चवालीस मिनट लगे हैं, तब बाबा ने कहा, "छियालीस मिनट का हमें हक है, साढ़े चवालीस लगे। अठारह मिनट प्रति मील से हमारी गति कुछ अच्छी है।"

पेट की मांग या 'देव-बलात्कार'

लौटते समय आगे-आगे कुछ स्त्रियां लकड़ी का भार उठाये जा रही थीं। उनमें एक बूढ़ी स्त्री के सिर पर दूना भार था। उसे देखकर बाबा ने कहा, "इसपर कुटुम्ब के पालन-पोषण का अधिक भार होगा, इसलिए यह और सबसे अधिक भार उठाये ले जा रही है। इन सबमें सबसे ज्यादा बूढ़ी भी यही है। इसके कुटुम्ब में प्राणी भी अधिक होंगे और इसलिए इसकी जरूरत भी सबसे ज्यादा होगी। यह भी एक तरह का देव-बलात्कार ही है। कर्त्तव्य ही सही, किन्तु एक प्रकार से इसका कर्त्तव्य और इसकी जिम्मे-दारी को देव-बलात्कार ही कहा जा सकता है। इस बलात्कार के परिणाम से ही तो मनुष्य अपने कुटुम्ब की सेवा करता है, इसी-लिए इसे देव-बलात्कार कहा। भगवान् ने इस पर अधिक भार डाला और इसलिए इसे अधिक भार ढोना पड़ रहा है।

"ऐसे ही मुझे याद है कि हमारे पवनार-आश्रम में एक पांजन करनेवाला रोज सुबह ४ बजे नदी पर आकर सूत में मांडी लगाया करता था और ९ बजे तक उसे घर पहुंच जाना ही होता था। यदि वह एक दिन भी चूकता या उसे देर होती तो उसका नुकसान होता

था और उसकी रोजी मारी जाती थी। सुबह ४ बजे वह वहां पहुंचता था। इसका मतलब है कि वह घर से और भी जल्दी चलता होगा। कड़कड़ाती सरदी में भी वह एक दिन भी नागा नहीं करता था, क्योंकि सारे कुटुम्ब का भार उसपर था और उसका परिवार भी बड़ा था। उसे देखकर भी मुझे यही ख़याल आता था कि यह भी एक प्रकार का देव-बलात्कार ही है। कितनी निष्ठा से वह इस सेवा का अनुष्ठान करता है! यह सेवा भी उसकी एक प्रकार से कर्म-साधना ही है, चाहे वह पेट की मांग के कारण ही क्यों न हो।"
पेट की मांग के लिए मनुष्य को जो कर्म करना पड़ता है और उससे जो सेवा होती है, बाबा ने उसको भी सीधी पेट की मांग न कहकर कितना सुन्दर शब्द ढूंढ़ा है 'देव-बलात्कार।' हां, मनुष्य के बलात्कार को वह कभी भी इस तरह मूक रहकर सहन नहीं कर सकता, वह अवश्य ही उसका प्रतिकार करेगा; किन्तु इस देव-बलात्कार को मूक रहकर और उसे अपना कर्त्तव्य समझकर ही मनुष्य ग्रहण करता है। इस भावना से ही तो वह इतना कष्ट सहन करता है और इतनी सेवा करने में समर्थ होता है। अद्‌भुत है यह देव-बलात्कार! वही भगवान् बलात्कार करता है और वही उसे शक्ति और सेवा-भाव भी देता है।

इस प्रसंग पर से ही बाबा ने पाप और पुण्य की भी थोड़ी व्याख्या की और इस पाप और पुण्य में से ही उत्पन्न सुख-दुःख का वर्णन किया। वह कहते थे कि पेट की मांग के लिए ही मनुष्य इस देव-बलात्कार को सहन करता है, इसीमें उसके पाप-पुण्य का फल भी है, उसे ही चाहे कर्मों का फल मान लें। वह इस देव-बलात्कार को जीवन की कमाई के लिए ही श्रद्धा-भक्तिसहित ग्रहण करता है ऐसी बात नहीं, परन्तु इसीसे इस सेवा-भावना

के प्रतिफल में श्रद्धा-भक्ति से की गई इस देवपूजा से उसे जीवन की सच्ची कमाई भी प्राप्त होती है।

इन्हीं सब पाप-पुण्य, सुख-दुःख आदि की चर्चा चलने पर जन्म और मृत्यु की चर्चा भी चली। विषय गूढ़ था, पर बाबा के लिए तो बड़ा ही आसान और रुचिपूर्ण। कुछ भी पूछिये, वह तुरन्त उसका समाधान कर देते थे। पर जन्म और मृत्यु तो हमें जैसे रहस्यमय लगते हैं, बाबा को भी वह रहस्यमय प्रतीत होते हैं। तभी तो बाबा ने कहा, "जन्म और मृत्यु दोनों ही रहस्य हैं। मृत्यु एक लम्बी नींद के समान ही तो है। शेर सोता है और मनुष्य भी सोता है, पर अनुभव एक ही है। इसी तरह मृत्यु भी सबके लिए एक सी-ही है, पर है रहस्यमय।"

हमें यह विषय भी गूढ़ रहस्यमय लगा, इसलिए हम सब चुप ही रहे। बाबा ने तो न मालूम कितना बताया, "यह जगत् मिथ्या है। बाइबल में भी 'वैनिटी' शब्द है, जिसका मतलब है 'मिथ्या'। वे लोग भले ही भौतिकवाद में ही फंसे हों, पर उनके धर्मग्रन्थ भी त्याग का उपदेश देते हैं। इस संसार को 'वैनिटी'—मिथ्या—बताकर।"

बाबा का दृष्टिकोण

इसी भौतिक और अध्यात्मवाद से त्याग और तपस्या तथा चित्तशुद्धि का ध्यान बाबा ने कराया। अचानक हिमालय और वन-पर्वतों की ओर बाबा का ध्यान गया और फिर शिमला और मसूरी की याद की। शिमला और मसूरी का जिक्र करते हुए बाबा बोले, "इन तपस्या के स्थानों को भी अब लोगों ने भोग के स्थान बना दिया है। आज वहां ऐशो-आराम की हर सामग्री उपस्थित है और लोग वहां तपस्या के लिए, नहीं सैर करके जी

बहलाने जाते हैं और जी बहलाकर खाली हाथ वापस आ जाते हैं। जहां ऋषि-मुनि जीवन की असली सम्पत्ति खोजते और पाते थे, वहां आज लोग केवल पैसे लुटाने जाते हैं और कुछ पाने के बजाय खोकर ही आते हैं।" बाबा के इस दृष्टिकोण में कितना सत्य है ! आज तो भौतिकवाद आध्यात्मिकता को नष्ट करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा है !

कुछ दूर जाने पर ही सामने खेत के किनारे, एक टीले की पगडंडी पर, पांच व्यक्ति चले जा रहे थे। उन्हें देखते ही बाबा के मुंह से निकला, "पांच पांडव चले जा रहे हैं।" उनमें से एक कुछ आगे था और इसलिए बाबा ने उसे लक्ष्य करके कहा, "धर्मराज आगे जा रहे हैं।" बाबा की हर उपमा में कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति रहती है ! होली के दिनों में फूलों से सजे पलाश के वृक्ष को देखकर वह अर्जुन की याद करते हैं और आते-जाते प्राणियों को देखकर वह पांच पांडवों और धर्मराज का ध्यान करते हैं। उनका मन मानो सदा इन कथा-वार्ताओं और शास्त्रों में निमज्जित रहता है, इसीलिए उनकी हर उक्ति में वह सहज ही अभिव्यक्त हो जाता है। यदि वह साधारण व्यक्तियों को आते-जाते देख उनमें पांडव और धर्मराज का दर्शन करते हैं तो इस सृष्टि के हर अणु में भी वह भगवान के दर्शन करते हैं, इसमें आश्चर्य नहीं है। और भगवान में एकरूप इस देवमानव के चरणों की पूजा कर हम भी कितना पुण्य-लाभ करके कृतकृत्य हो सकते हैं, हो जाते हैं !

कुछ दूर आगे चलकर ब्राह्मणों का, खासकर बनारस के ब्राह्मणों का, बाबा ने जिक्र किया। बाबा कहने लगे कि "आजकल के ब्राह्मण अपना सच्चा कर्त्तव्य भूल गये हैं। राजेन्द्रबाबू

पर राममनोहर लोहिया ने जो टीका की वह मैंने देखी। उसमें मैं ब्राह्मणों को ही कसूरवार मानता हूं। जब मैं बनारस गया तो मैंने उन ब्राह्मणों को खूब डांटा। मैं तो स्वयं ब्राह्मण हूं, इसलिए मुझसे तो पैर छुवाने या धुलवाने का कोई प्रश्न ही नहीं था, पर राजेन्द्र-बाबू से उन्होंने वैसा करवाया। इसमें राजेन्द्रबाबू का क्या दोष! वह तो इतने श्रद्धालु हैं कि उस श्रद्धा के कारण ब्राह्मणों की हर तरह से पूजा करते हैं; पर वहां के ब्राह्मणों को ही यह समझना चाहिए था कि वे क्या करने जा रहे हैं।" फिर मुझसे पूछने लगे, "क्या उन्हें यह मालूम है?" मैंने कहा, "हां, शायद उनको मालूम तो हुआ था पर उन्होंने उसका कोई स्पष्टीकरण नहीं किया और न उचित ही समझा, और वह कहते भी क्या! श्रद्धा से किये कार्य में तर्क को स्थान नहीं होता।" बाबा बोले, "हां, उनको चुप ही रहना चाहिए।"

घूमने के बाद बाबा वजन करते हैं। आज जब बाबा पैर धोने गये तब हम लोगों ने वजन का कांटा धूप में रख दिया, क्योंकि उस अमरीकी भाई को चित्र लेना था। जब बाबा ने रोज के स्थान पर कांटा नहीं देखा और उन्हें मैंने, जहां वह रक्खा था उस ओर, इशारा किया तो बाबा हँसकर बोल पड़े, "अच्छा, उनकी फोटो की सुविधा के लिए धूप में रक्खा है। पर धूप में वजन बढ़नेवाला नहीं है।" हमें डर था कि कहीं बाबा इन्कार ही न कर दें, पर इतना कहकर चुपचाप बाबा ने वजन कर लिया। ९१।। पौंड वजन था आज।

दोपहर को श्री मेगी गया जाने से पूर्व विनोबा से मिलने गये और आगे के लिए आदेश चाहा। ७ मार्च को चांदील में ही होने वाले सर्वोदय-सम्मेलन में शामिल होने के लिए विनोबा की

आज्ञा और सलाह मांगी। तब विनोबा ने कहा कि सम्मेलन का सारा कार्यक्रम तो हिन्दी में ही होगा, अतः आने की विशेष जरूरत तो नहीं; फिर भी सब लोग एकत्र होंगे और सबसे विचार पाने और सम्मेलन देखने की इच्छा हो तो आप आ सकते हैं।

हमारे अमरीकी साथी

जाते-जाते श्री मेगी मुझसे मिले और मैंने देखा कि वह विनोबा की हर कृति और प्रवृत्ति से बड़े ही प्रभावित हुए हैं। यहां के वातावरण में वह ऐसे घुल-मिल गये मानो अर्से से यहां रहते हों। अमेरिका के बिल्कुल भिन्न और ऊंचे रहन-सहन में रहने की आदत होने पर भी इस सादगी के साथ वह इस वातावरण में एकरस हो सकते हैं, यह देखकर मुझे आश्चर्य होता था। वह ठीक सुबह ४ बजे उठकर प्रार्थना में शरीक होते, सूत कातना न आने पर भी उतना समय बैठकर सूत कातना सीखते और कातने की कोशिश करते। सबकी तरह ही कुएं से पानी भरने आदि की ड्यूटी भी करते और हर कार्य में उत्साह से भाग लेते। इतना ही नहीं, भोजन के समय बड़े उत्साह और प्रसन्नता के साथ परोसने में भी हिस्सा लेते। मुझसे हर चीज का हिन्दी में नाम पूछ लेते—दाल, भात, सब्जी, रोटी, चटनी, दही इत्यादि और सभी नाम याद कर लेते और दोहराते। "आपको क्या चाहिए", "बस" आदि भी सीखा। उनकी इस जिज्ञासा-वृत्ति को देखकर हमें सचमुच ही अचरज होता था। वस्तुतः यह विदेशियों की एक विशेषता है। मुझसे उन्होंने हिन्दू-धर्म में पूजाविधि की विविधता के बारे में कई बार पूछा। भारत की अन्य विशेषताओं की ओर भी उनका ध्यान गया था, पर फिर भी उन्होंने मुझसे कहा, "आप अमेरिका में भारत

की हर चीज नहीं पायेंगी; लेकिन मैं देखता हूं कि भारत में अमेरिका की मानो हर चीज उपलब्ध है । अमेरिका में भौतिकता की दृष्टि से ऐशो-आराम की हर चीज प्राप्त होगी, भारत में भी वैसी ही आलीशान इमारतें हैं, वैसी ही वस्तुएं हैं और अब स्वतंत्रता मिलने के बाद कृषि, उद्योग आदि हर क्षेत्र में भारत उन्नति कर ही रहा है, लेकिन इतना मैं मानता हूं कि जो आध्यात्मिक शान्ति और संतोष इस देश में है, वह अमेरिका में नहीं है।" पूर्व की संस्कृति का यह असर उनके मन पर पड़ा, सेवाग्राम और विनोबा के दर्शन से। उन्होंने अपने देश में इस अभाव को महसूस किया और व्यक्त भी किया। यह सब सुनकर अपने देश के प्रति गौरव और गर्व से मेरा मन भर उठा। आज भी हमारा देश उन समुन्नत देशों के मुकाबले अपनी उन्नत संस्कृति के कारण सिर ऊंचा किये हुए है और संघर्षों में पड़े संसार को शान्ति का संदेश दे रहा है। जो भी यहां आता है, इस भाव को, इस संदेश को, लेकर जाता है । ऐसे ही संदेश को पाकर संतुष्ट और प्रसन्न इस अमरीकी भाई ने चांदील से विदा ली ।

समाज-सेवा का आधार

चांदील ग्राम के कुछ विशेष लोग आज इकट्ठे हुए थे । प्रार्थना के बाद गांव में कुछ काम आरंभ करने के सिलसिले में पूज्य विनोबा से विचार-विनिमय करने और उनसे आदेश पाने के लिए वे उनके पास आये । बाबा ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा——

"यह गांव व्यापारियों का है । व्यापारी तो महाजन कहलाते हैं। 'महाजनो येन गतः स पंथा'——महाजन जिस रास्ते से जाते हैं, उसी रास्ते से दूसरे लोग जाते हैं। अगर वे लोग सेवा-

परायण बनेंगे तो दूसरे लोग भी सेवापरायण बनेंगे। इसलिए महाजनों के साथ में जनता रहती है। अब ऐसे गांव में, जहां सर्वोदय-सम्मेलन होनेवाला है, अगर कुछ काम चले तो अच्छा है, ऐसी हरेक की इच्छा होगी। पर मेरा आग्रह नहीं है। भूदान का काम हम कर रहे हैं, लाखों एकड़ जमीन मिली है और करोड़ों एकड़ जमीन हासिल करने की बात करते हैं। तो भी मेरा आग्रह नहीं है। यह मेरा काम नहीं है। आपमें जो जनता की भलाई चाहते हैं, समाज-सेवा को अपना कर्त्तव्य मानते हैं, वे इसके लिए आग्रह रक्खें और कुछ काम करें तो अच्छा है। ईश्वरीय योजना में मेरी दुनिया का एक नकशा बना हुआ है उसपर मैं सब-कुछ छोड़ता हूं। लेकिन यह ईश्वर योजना के बाहर है, ऐसा नहीं कह सकते। आप सबके हृदय में वह है। मैंने सूचित किया था कि अगर आप चाहें तो यहां जो साधुबाबा हैं, उनका उपयोग हो सकता है। इस तरह का लाभ उठाना बुद्धिमानी का लक्षण है। परिस्थितिवश आपको साधुबाबा का सहज संयोग मिल गया है। यह न भी मिला होता तो भी मैं कहूंगा कि घर बैठे गंगा आई है, बिना बुलाये सर्वोदय-सम्मेलन हो रहा है, आपके कुछ पूर्व-पुण्यों का संचय होगा या इस जन्म का पुण्य होगा जो प्रकट हुआ, ऐसा मैं मानता हूं।

जमनालालजी की उदार वृत्ति

"स्व० जमनालालजी ने अपनी संपत्ति का उपयोग सज्जनों को एकत्र करने में किया। इसलिए आप वर्धा में देखेंगे कि बहुत-से लोग आकर इकट्ठे हुए। बापू भी वहां रहे। हम लोग भी वहां रहे। गो-सेवा-संघ, तालीमी संघ, गांधी-सेवा-संघ, चर्खा-संघ इत्यादि संस्थाएं वहां रहीं। उनका पैसा ही नहीं, बल्कि उनका हृदय भी

उन संस्थाओं में था। वह सत्य का बारीकी से पालन करने की कोशिश करते थे। अन्त:परीक्षा करके अपनेको लायक बनाने की कोशिश करते थे। उन्हें वहां आश्रम चलाने की इच्छा हुई, बापू ने मुझे वहां भेजा। आश्रम में तो कुछ शिक्षा पानी होती है, कुछ तपस्या करनी होती है। जमनालालजी ने अपने लड़कों को मेरे हाथ में सौंपा, जबकि लोग अपने लड़कों को तो स्कूल और कालेजों में भेजते हैं।

"आप चाहें तो एक संस्था कायम करें, उसे चाहे आश्रम कहें, सेवा-मन्दिर कहें, सर्वोदय-समाज, ग्राम-सेवा-समाज या लोकोदय समाज कहें, कुछ भी कहें। उसके लिए कुछ जमीन की जरूरत होगी और दो-चार मकान भी चाहिए। बड़े मकान न सही, कुछ झोंपड़ियां ही सही। झोंपड़ियां अच्छी और सादा हों, हम सादाई से रहें और आप भी सादा हों। संस्था में खासकर हरिजनों और आदिवासियों को लिया जायऔर मेरी इच्छा है कि आदिवासियों को संस्कृत सिखाई जाय ताकि संस्कृत के अच्छे विद्वान् तैयार हों। पहले तो बहुत बड़ा आरंभ करना नहीं चाहिए। पहली बुद्धि तो यह है कि काम को आरंभ ही न करें। 'अनारंभो हि कार्याणां प्रथमं बुद्धिलक्षणम् ....' मगर शुरू किया तो उस काम को अन्त तक निभाना है।

"कुछ संपत्ति का इंतजाम भी करना होगा। आपने एक-दो हजार रुपये दे डाले, ऐसा नहीं। अपने जीवन की आमदनी का एक हिस्सा दो—चाहे वह १।८ हो, चाहे १।६ और चाहे एक-चौथाई। हम एक ही दिन खालें और फिर नहीं खायें, ऐसा नहीं होता; इसलिए हमें आमदनी का एक हिस्सा हमेशा समाज को देना ही चाहिए। यह सोचकर ऐसी संस्था बनाने की कोई योजना करें।

हमेशा की बात से लोग झिझकते हैं। एकाध बार तो दे देते हैं। आप शादी करते हैं तो वह एकाध बरस के लिए होती है या जिंदगी-भर के लिए होती है ? जिंदगी-भर के लिए उसे निभाते जाते हैं, क्योंकि उसमें एक वासना है। वह जैसे निभाते हैं वैसे ही इसमें यदि सद्भावना रही तो वह निभेगा। तो यह एक बड़ी विचारशक्ति है, ऐसा मैं मानता हूं। आपमें कोई छोटे हैं, कोई बड़े हैं, वे उदार बनें; परोपकार की भावना से नहीं, कर्त्तव्य समझकर। कर्त्तव्य-बुद्धि से आप काम करें, यह मैं चाहता हूं।"

दान के लिए चित्त-शुद्धि आवश्यक

"जो देनेवाले होंगे उनसे मैं कहूंगा कि जिनके बदन पर खादी नहीं है, उन्हें खादी पहननी होगी। ग्रामोद्योग की चीजों का उपयोग करना होगा। व्यसन छोड़ने होंगे। पैसा तो हमें गिरा भी सकता है। आपने बुरी तरह से पैसा कमाया तो वह पैसा मैल हो गया। हमको अपना जीवन शुद्ध करना है। चित्तशुद्धि का व्रत लेकर ही यह काम करना होगा। आप कुछ भी दें, वह आपकी चित्तशुद्धि के प्रयत्न की निशानी होनी चाहिए। एक मनुष्य ने देना स्वीकार किया और बाद में न दे तो वह अशुद्ध चित्तवृत्ति का लक्षण है। परमेश्वर ने चाहा तो १२ तारीख को मैं जाऊंगा। चाहता यह हूं कि बिहार की भूमि-समस्या हल हो। सब सुखी हों, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' यही हम इच्छा करते जाते हैं। हम इच्छा करें, लेकिन वैसा वर्ताव न करें तो कोई लाभ नहीं। एक हिस्सा हम समाज-सेवा में लगायें और अपना जीवन शुद्ध बनायें, तो हमारा जीवन सुखी हो सकता है, समाज सुखी हो सकता है।"

इसके बाद विनोबाजी ने भाइयों से पूछा कि जो भाई इसमें

योग देना चाहते हैं वे हाथ ऊंचा करें और सम्मति में सब भाइयों ने हाथ ऊंचा किया। तब फिर वह बोले—

दान को बोओ

"मुझे खुशी है कि आप सब लोग इसमें योग देना चाहते हैं। दान फेंकना नहीं है, बल्कि बोना है। बोने में तो दुगुना-चौगुना हमें मिलता है। दान देने का अर्थ हमने अभी तक यही समझा कि फेंकना ही दान है। आनन्द के प्रसंग पर, जैसा कि विवाह-आदि, दुःख के प्रसंग पर जैसे कि मृत्यु-आदि, पर दान देते हैं, वह दान है। दान का तो झरना बहना चाहिए, लगातार। लेकिन लोगों का यह अनुभव है कि एक बार लोग कबूल करते हैं, फिर देते नहीं हैं, मांगने जाना पड़ता है। जो लोग मुझे दान देंगे वे बंध जायंगे। मैं तो उनके पास मांगने नहीं जाऊंगा। उनको परमेश्वर देख लेगा।

"कुछ लोग संपत्ति-दान देने में इसलिए भी डरते हैं कि मैं उनसे उनका हिस्सा पूछूंगा। इसमें उन्हें अपनी असली इनकम बतानी पड़ेगी और इनकम बताने से उतना इनकम-टैक्स गवर्नमेंट को देना होगा। इसे छिपाने के लिए वे इतना पाप करते हैं। लोग कहते हैं कि हम आपको तो ठगना नहीं चाहेंगे, पर सरकार को आमदनी नहीं बताना चाहते। आप चुपचाप दान लें तो हम सही आमदनी का हिस्सा आपको देंगे; चुपचाप नहीं लेंगे तो हम १० लाख आमदनी के बजाय सरकार को जो ४ लाख की आमदनी बताते हैं उतने का ही हिस्सा आपको मिलेगा याने कम दान मिलेगा। तो मैं कहता हूँ कि दान देनेवालों की अगर चित्तशुद्धि नहीं होती तो उसकी एक कौड़ी भी मुझे नहीं चाहिए। दान देनेवालों के लिए कुछ शर्तें हों, जैसे सत्य पर चलना, खादी का उपयोग करना, जहां-तक हो ग्रामोद्योग के साधनों को काम में लाना, व्यसन छोड़ना।

ऐसे ही लोग हमारी संस्था के पोषक हैं। उनमें कम-से-कम सत्याचरण तो होना ही चाहिए। कोई मुझे कहे कि असत्य से पैसा ज्यादा मिलेगा तो वह मुझे नहीं चाहिए। मुझे आठ आने की जगह चार आना चलेगा, पर आपका जीवन सत्याचरण पर चले, यही मैं चाहता हूं। मैं तो हृदय-शुद्धि और हृदय-परिवर्तन चाहता हूं। यही मेरा उद्देश्य है इसमें।"

बाबा की तबियत कुछ नरम है। खांसी की शिकायत हो गई है। इसी वजह से ठीक नींद भी नहीं आती। रात को कई बार मैंने उन्हें खांसते हुए सुना और इसीलिए आज जब मैं उनके पास बैठी तो मैंने उनसे तबियत का हाल पूछा। रात को तो खांसी के कारण वह अच्छी तरह नहीं सो सके, ऐसा लगता है। बाबा इसका मूल कारण ढूंढ़ रहे थे और इसलिए सहज ही वह अपनी खुराक का विश्लेषण कर रहे थे कि क्या-क्या खाया, किस कारण गला खराब हुआ। उनकी खुराक तो बिल्कुल नपी-तुली रहती है, एक तरह से सूक्ष्म ही और इसलिए उसका विश्लेषण भी बड़ी ही सूक्ष्मता से करना पड़ता है। इस तरह कुछ देर तक इसी सम्बन्ध में बातें करते रहे और फिर बाबा को आराम देने के हेतु हम स्वयं ही उनके पास से उठकर अपने कार्य में लग गये, पर ध्यान बाबा की ओर ही था। उनके दुबले-पतले शरीर को थोड़ी-सी भी तकलीफ होती है तो बड़ी वेदना होती है। यों तो बाबा ही अपने इस शरीर को काफी तपा लेते हैं, पर ऊपर से अस्वस्थता का और भी कष्ट जब उसपर पड़ता है तो बाबा को पीड़ा हो-न हो, हमें तो देखकर अवश्य पीड़ा होती है, और इसलिए हम सदा भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह हमेशा स्वस्थ रहें।

बुधवार; २५ फरवरी '५३

: १९ :

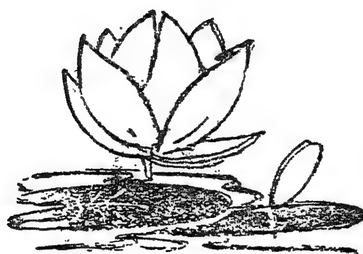
सब ईश्वराधीन

सबेरे प्रार्थना में तो बाबा स्वस्थचित्त और शान्त बैठे ही थे पर जब घूमने के समय मैं उनके पास गई और घूमने जाने की कोई तैयारी न देखी तो थोड़ी देर शान्त खड़ी रही। बाबा ने जब मेरी ओर देखा तो मुस्कराये और बोले, "आज हम घूमने नहीं जाते, तुम जाओ!" पर बाबा के साथ घूमने की ऐसी आदत पड़ गई थी कि उनके बिना घूमने जाने की कल्पना भी नीरस और आनन्द-शून्य लगी, इसलिए मैं कुछ न बोलकर उनके पास बैठ गई। समझ गई थी कि बाबा की तबियत कुछ ठीक नहीं है। महादेवी ताई भी पास में बैठी थीं। त्रिफला, हरड़ देने-न-देने या लेने-न-लेने के बारे में विनोबा से कुछ कह रही थीं। बाबा के हाथ में 'चक्रधर सूत्रोक्त' नाम की एक पुस्तक थी। उसीमें से एकाध पन्ना पलटते हुए एक-दो सूत्र और उनका अर्थ बताते जाते थे। एक सूत्र था, जिसका अर्थ था कि रोगी को कुछ दे दिया जाय तो उसे ना नहीं कहना चाहिए। यह तो हमारे ही मन की बात थी। तभी तो ताई ने विनोबा से कहा कि आपको भी दवा आदि दें तो ना नहीं कहना चाहिए। बाबा मुस्करा दिये। फिर और एक सूत्र बोले, जिसका मतलब था, 'किसीके अधीन रहना नहीं और किसीको पराधीन रखना नहीं। सब ईश्वर के अधीन हैं।' यह बाबा के मन की बात थी। हमें कहने लगे, "हम तो ईश्वर के अधीन हैं, वह जैसे रक्खेगा वही ठीक है।" फिर एक सूत्र चुना और उसका अर्थ बताया कि "भोजन प्राण को देना, इंद्रियों को नहीं। समझे न?" इस तरह

कुछ मराठी सूत्र उन्होंने पढ़कर सुनाए और उनका अर्थ भी बताया।

आज सारे दिन बाबा की तबियत सुस्त ही रही। दूसरे दिन मैं जमशेदपुर जानेवाली थी, टाटा का कारखाना देखने के लिए और साथ ही बाबा की तबियत के लिए डा० खान से बातें करने और दवा इत्यादि लाने की बात थी। बाबा को सर्दी लग गई थी और सर्दी के कारण ही उनका गला भी खराब हुआ था। आजकल बाहर ओस काफी पड़ती है, पर फिर भी बाबा बाहर ही सोते हैं। उनके सामने किसीका आग्रह भी तो नहीं चलता। वह हमसे भी ज्यादा ज़िद कर लेते हैं और किसीकी भी न मानकर मनमानी करते हैं। स्वच्छ आकाश के नीचे सोना ही वह पसन्द करते हैं। उनके मन को तो आनन्द मिल जाता है, मन की मर्जी भी पूरी हो जाती है, पर बेचारे कमजोर शरीर को ही सब झेलना पड़ता है।

गुरुवार; २६ फरवरी '५३



: २० :

जमशेदपुर का विशाल कारखाना

आज बाबा प्रार्थना के बाद ही फिर सो गये। सूत्र-यज्ञ के बाद जब मैं उन्हें देखने गई तब वह तकिये के सहारे बैठे थे। थके-से लगते थे। मुझे तो मालूम था कि आज वह घूमने नहीं जायंगे पर मुझे देखकर वह बोले, "आज हम घूमने के पक्ष में नहीं हैं, सोने के पक्ष में हैं।" विनोबा गंभीर होते हुए भी विनोदी हैं। अपनी तकलीफ को न बताते हुए उन्होंने हँसी में इस तरह अपने भाव व्यक्त किये। उनके कहने से तो ऐसा लगता था, मानो उन्हें कुछ तकलीफ है ही नहीं। पर सर्दी का असर काफी था, खांसी भी अधिक थी। रात को नींद भी नहीं आई, इसलिए थोड़ा आराम करना आवश्यक था, आवश्यक क्या था, कहना चाहिए कि आराम के लिए वह विवश थे। हम उनके पास बैठते तो बाबा और कुछ बोलते। अतः आराम के लिए उन्हें अकेला छोड़कर मैं वहां से उठ खड़ी हुई।

दस बजे के करीब मैं जमशेदपुर गई। डा० खान को विनोबा का हाल बताया। डा० खान ने पूछा कि बाबा बाहर सोते हैं क्या? और मेरे 'हां' कहने पर कहने लगे कि बहन, उनसे कहो कि अब अगर हमारी बात वह नहीं मानेंगे तो हमें सत्याग्रह करना पड़ेगा। वैसे वह हमारे गुरु हैं लेकिन मेडिकल में हम उनके गुरु हैं। अतः उन्हें हमारी बात बिना किसी आनाकानी के माननी चाहिए। मैंने डाक्टरसाहब से कहा कि आप गुरु हो सकते हैं पर हमें तो वह अपने बच्चे ही मानते हैं न! इसलिए अब आप ही आकर उन्हें मना

लीजिए। डा० खान ने उन्हें देखने आने के लिए कहा और बाबा के लिए दवा दी और कहा कि दवा उन्हें अवश्य दे दें। डाक्टर-साहब का आदेश और दवा लेकर मैं टाटा का कारखाना देखने गई।

टाटा के कारखाने में

टाटा का विशाल कारखाना देखा। देखे बिना उसकी कल्पना होनी मुश्किल है। लोहे के उस विशालकाय कारखाने में निरन्तर मानो आग के बड़े-बड़े गोले दहक रहे हैं। पांच मिनिट भी उन दहकती लपटों और ज्वालाओं के पास खड़े होना मुश्किल होता था। लगता था, भट्टी में ही खड़े हैं। लपटों के बीच खड़े होने का-सा अनुभव होता था और कुछ ही क्षणों में झुलस-से जाते थे। पर वहां भी हमारे जैसे मानव ही तो काम करते हैं, उन्हें आठ घंटे ड्यूटी देनी होती है। सचमुच कितनी पीड़ा छिपी है इन शोलों के नीचे ! मैं एक-एक दृश्य देखती जाती थी और साथ-ही-साथ मन तीव्रता से आंदोलित हो रहा था।

तीन-चार घंटे घूमे। रेलगाड़ी के पहिये कैसे बनते हैं, पटरियां कैसे बनती हैं, टीन की चद्दरें कैसे तैयार होती हैं, लोहा कैसे गलाया जाता है, यह सब देखा। जहां लोहा गलाया जाता था वहां तो ऐसा लगता था मानो ज्वालामुखी का लावा बह रहा हो। यह सब देखते हुए आंखें तो एकदम जलने लगी थीं और साथ ही विचारों में भी ज्वाला-सी लग रही थी। कितना क्षय होता है मानव का। जहां पहुंची वहां लिखा हुआ दीखता था—"सावधान, खतरे से बचो।"—'Stop, Look & Listen !' 'Short cut may cut short life.' और तिसपर भी आये-दिन दुर्घटना।

लेकिन फिर भी यह विज्ञान का एक बड़ा चमत्कार ही जो

है। मनुष्य के विकसित मस्तिष्क से उद्भूत एक अजूबा है। पर उस कारखाने को देखने के बाद एक ही विचार मेरे मन में था और मैं सोचती थी, कहां ग्राम्य जीवन की शान्ति और कहां वह कोलाहल !

ज़िद्दी बाबा

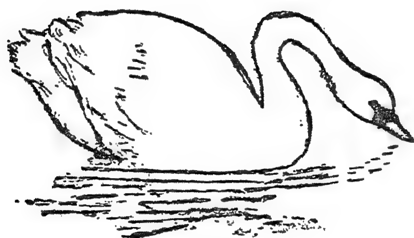
संध्या को वापस चांदील आ गई। विनोबा के पास गई। बाबा बिस्तर पर लेटे हुए थे। मैंने जाकर उन्हें डाक्टर का आदेश कह-सुनाया और कहा कि डाक्टर कह रहे थे कि इस दवा में चॉकलेट-कोटेड गोलियां भी आती हैं। यदि आप चाहेंगे तो बाद में वह भी भेज देंगे। बाबा हँस दिये। बच्चों की-सी नटखट हँसी के साथ कहा, "हम तो बिटर भी नहीं लेंगे और मीठी भी नहीं।" मैंने उन्हें डाक्टर का यह संदेश भी दिया कि उन्होंने आपको बाहर सोने से मना किया है, क्योंकि उसी सर्दी का असर आपपर हुआ है। तब एकदम उत्साह से उठे और अपने डेस्क के पास जाकर बैठ गये। एक किताब निकालकर उसमें से हमें पढ़कर सुनाने लगे कि सर्दी बाहर सोने से नहीं होती, बल्कि बन्द हवा में सोने से स्वास्थ्य को ज्यादा नुकसान होता है। और इसी तरह का बहुत-सा पढ़ने के बाद मुझे कहा, "आज जब मैंने यह पढ़ा तब मुझे बहुत उत्साह आया।" उसमें तो बाहर सोने के पक्ष में ही कहा गया था। बाबा को जब मैंने इतना खुश देखा तो मुझसे कहे बिना न रहा गया और मैं बोल पड़ी, "हां, आपके मन के अनुकूल बात मिल गई न!"

बस, अपने मन की बात पुस्तक में देखकर तो मानो उन्हें अपने पक्ष को मजबूत करने के लिए एक ठोस उदाहरण हाथ आ गया था। डाक्टर का लिखित लेख सामने था और वह भी सुविख्यात डाक्टर का, फिर मेरी बात को वह कहां सुनने लगे। मैंने अपना

कर्त्तव्य किया। डाक्टर ने मुझे जो कुछ कहा था वह बाबा को मैंने कह दिया और बाबा से थोड़ी देर इसी विषय में बातें करके मैं उठ गई।

अत्यधिक थक गई थी, इसलिए लेटते ही नींद आ गई।

शुक्रवार; २७ फरवरी '५३



: २१ :

सम्मेलन की तैयारियां

६ बजने में २० मिनट पर बाबा घूमने निकल पड़े। मैं उस समय कताई में थी। सूत्रयज्ञ पूरा होते ही मैं घूमने के लिए तैयार हुई। सामने जीप खड़ी थी, इसलिए कुछ दूर तक जीप में गई, ताकि बाबा को पकड़ सकूं। थोड़ी दूर पर उतर गई और दौड़कर बाबा को पकड़ा। बाबा के पास जब पहुँची तो उन्होंने पूछा "क्यों दौड़कर आई है क्या ?" मैं हँसते हुए चुप रही और बाबा के साथ हो ली। आज हमेशा से बाबा एक मील कम चले।

घूमते समय मैंने कारखाना देखने के बाद मन पर जो प्रतिक्रिया हुई थी, वह बाबा को बताई। उन्होंने कहा, "उसमें हमें याने शिक्षित वर्ग को काम करना चाहिए। शिक्षित और अशिक्षित दोनों बिल्कुल अलग हो जाते हैं। खानों में, खदानों में, कारखानों में शिक्षित लोग काम करेंगे तो कुछ सुधार होगा, अन्यथा जीवन का, स्वास्थ्य का क्षय तो होता ही है।" उसके अन्य पहलू पर बाबा ने कुछ नहीं कहा और इतना कहकर वह चुप हो गये। यह तो मैं जानती ही थी कि विनोबा औद्योगीकरण की अपेक्षा ग्रामोद्योग के पक्ष में हैं, अतः उनकी चुप्पी पर मैं भी चुप ही रही।

प्रातः-भ्रमण में, नवचेतनामय दिन के आरंभ में, नवोदित सूर्य की प्रकाशमयी किरणों के समान ही विनोबा से नवस्फूर्तिमय और प्रेरणामय विचारों का प्रकाश मिलता है। नित्य ही कोई-न-कोई चर्चा, कोई-न-कोई समस्या या कोई-न-कोई प्रश्न सामने आता है और उसको वह स्पष्ट करते हुए, हल करते हुए और

समझाते हुए अपनी योजना को भी सामने रखते हैं। इसीमें उनका मार्ग-दर्शन भी निहित होता है।

बिहार में भूदान-कार्य

आज श्री वैद्यनाथबाबू से बिहार में भूदान के कार्य और भविष्य की पद-यात्रा के बारे में पूछताछ करते हुए विनोबा ने भूदान के आंकड़ों आदि के सम्बन्ध में जानकारी चाही। फिर किस तरह हमें कार्य करना है, इसके बारे में अपना विचार रक्खा।

भूदान की क्रान्तिकारी यज्ञाग्नि तो अब प्रज्वलित हो उठी है। जनता भी जाग उठी है। वातावरण तैयार हो चुका है, फिर भी काम कठिन है। विनोबा कह रहे थे कि बापू ने भी इस तरह से काम नहीं किया था। यहां तो एक-एक गांव में जाना है, हरेक के पास व्यक्तिगत पहुंचना है, तभी काम हो सकता है। पर अब मुझे लगता है कि काम होगा। पिछले साल जब सर्वोदय-सम्मेलन हुआ तब भूदान का आंकड़ा एक लाख था, अब इस बार हम छः लाख तक पहुंचे हैं। अगले साल इससे भी अधिक और जोरों से काम होगा, ऐसी मुझे आशा है। लेकिन इसके लिए हमें कार्यकर्त्ता बहुत चाहिए। बिहार में ३२ लाख एकड़ का हमारा संकल्प है। यहां लगभग ७० हजार गांव हैं। हिसाब लगाकर वह बोले, "५०० कार्यकर्त्ता एक वर्ष के लिए चाहिए, जो पूरा समय देकर काम करने वाले हों। ऐसे कार्यकर्त्ताओं की एक सूची हमें तैयार करनी चाहिए। मैं समझता हूं कि बिहार में करीब ४५० थाने हैं। हर थाने से एक अच्छा कार्यकर्त्ता तो हमें मिल ही जायगा, ऐसी मेरी कल्पना है। ये कार्यकर्त्ता ऐसे हों, जिनका जनता पर प्रभाव हो और जिनका कुछ वजन हो। तभी उन्हें ज़मीन मिल सकती है। यह तो हुई स्थानीय कार्यकर्त्ताओं की बात। स्थानीय कार्यकर्त्ता

के होते हुए भी हर जिले में हमें अपना एक आदमी रखना होगा। उससे काम जल्दी होता है और काम ठंडा नहीं पड़ता।"

कार्यक्रम और मित्रों का आग्रह

श्री बैद्यनाथबाबू ने कहा, "पर कई बार ऐसे गांव भी होते हैं, जहां लोग कहते हैं कि अब हम सब कुछ करलेंगे, पर अक्सर ऐसा होता है कि आप किसी जिले में जाते हैं तो वहांके कार्यकर्त्ता आगे काम करने का निश्चय तो करते हैं पर आपके वहां से चले आने पर वे सुस्त पड़ जाते हैं।" इसका जवाब देते हुए विनोबा बोले, "वैसा होने पर भी हम अपना आदमी तो रक्खेंगे ही। यह मेरा उत्तरप्रदेश का अनुभव है। गया के लिए मुझे रामदेवबाबू ने कहा था कि अब यहां वातावरण बन गया है और सब काम हो जायगा। जब मैंने एक आदमी को वहां रक्खा उस समय उन्होंने मुझे कहा था कि कई बार बाहरवाले आदमी को रखने से लोग समझते हैं कि उनपर आक्रमण हुआ। पर जब मैंने आदमी को रक्खा और काम हुआ, तब एक महीने के बाद उन्होंने मुझे फिर बताया कि मेरा सोचना ही ठीक था और अच्छा किया कि मैंने अपने आदमी को रक्खा। मुझे तो उत्तरप्रदेश का अनुभव याद था। मेरे पहुंचने पर ऐसा लगता है कि काम हो जायगा, पर मेरे वहां से जाने के बाद कुछ नहीं होता, इसलिए हर जिले में हमारा एक आदमी होना ही चाहिए।

"पर अब काम का तरीका कुछ बदलना है। हमारे सामने दो काम हैं—एक खास काम और दूसरा आम काम। बड़े जमींदारों, राजाओं और सरकार के पास पहुंचना, यह है खास काम। जनता को जगाना है आम काम। तो आम काम तो हो चुका है। अब हमें खास काम करना है। इसीके अनुसार हमें अपना कार्यक्रम बनाना

है। पहले जैसे हर गांव में जाना, यह सोचकर चलते थे, उस तरीके से अब नहीं जाना। जहां काम हो, पहले से जहां कुछ तैयारी हो वहां मुझे जाना है। इसलिए हमारे जाने से पहले दस-पंद्रह आदमी उस जगह जायं और तैयारी कर रक्खें। इसमें अधिक शक्ति खर्च नहीं होगी और जमीन भी आसानी से मिलेगी।"

अब बाबा के मन में जल्दी-से-जल्दी गया पहुंचने की बात है। उनकी कमजोरी और अस्वस्थता को देखकर मित्रजन आग्रह करते हैं कि पैदल यात्रा में भी जैसे पहले प्रतिदिन पंद्रह-सोलह मील चलते थे वैसे अब न चला जाय। डाक्टरों की राय है कि पांच-छः मील भी उनके लिए बहुत अधिक हैं; पर बाबा को कहां परवाह है अपने शरीर की! वह तो जितना अधिक-से-अधिक काम ले सकते हैं, उससे लेते हैं। आखिर जीतते तो उनके मन और आत्मा ही हैं; लेकिन कभी-कभी बेचारा शरीर इस बलात्कार को नहीं सह पाता। और इसलिए कड़ा विरोध करके वह मन्द पड़ जाता है। पर यह तपस्वी संत उसकी भी कहां सुननेवाला है। इसीलिए जब पांच-छः मील की बात कोई कहता है तो वह धीरे-से अपना मत प्रदर्शित करते हैं "नहीं, दस मील तक चल सकते हैं, हां दस-मील से अधिक न हो, इसका ख़याल रखना है।" इस कड़े आदेश और सुझाव के आगे फिर और कोई क्या कह सकता है!

वैद्यनाथबाबू ने पांच-छः मील चलने का या इससे अधिक चलने के लिए बैलगाड़ी का उपयोग करने का जो सुझाव दिया था उसका उत्तर उन्हें मिल ही गया और वह चुप हो गये। इसके बाद काम की बात फिर आगे बढ़ी। विनोबा ने कहा, "हां, तो अब आप लोग कार्यकर्त्ताओं की एक लिस्ट बनाइये। पांचसौ कार्यकर्त्ता पूरा समय देनेवाले हों। आधे समय काम करनेवालों से भी हम मदद

लेंगे, क्योंकि उनमें भी कई ऐसे लोग होते हैं, जो आधे समय में भी बहुत काम कर सकते हैं और जो अच्छा काम करनेवाले हैं, उन्हें हमें छोड़ना नहीं है।"

कार्यकर्त्ताओं की समस्याएं

वैद्यनाथबाबू ने एक समस्या रक्खी। एक-दो अच्छे कार्यकर्त्ता भाइयों का नाम देकर उन्होंने बताया कि कई बार ऐसे कार्यकर्त्ता, जिनका प्रभाव लोगों में है, जमीन मांगने से हिचकिचाते हैं; क्योंकि वे कहते हैं कि उनके पास जमीन नहीं है, इसलिए दूसरों से जमीन मांगने पर लोग उन्हें नहीं देंगे। एक बात और भी है। कई कार्यकर्त्ता ऐसे हैं, जिनके जाने पर लोग जमीन देने को तैयार हों, पर कई कारणों से वे कार्यकर्त्ता तैयार नहीं होते। इसपर विनोबा ने बताया, "हां, इसमें कई सवाल आते हैं। एक तो वह किस पार्टी का है, दूसरा उसके पास देने को भूमि है या नहीं और तीसरा किस मनुष्य को अधिक महत्त्व दिया जाय। इन बातों के अलावा हर आदमी को संस्थागत और पारिवारिक काम रहते ही हैं। उसके अलावा चौथा आलस्य तो है ही। यह सब देख-सोचकर ही हमें रास्ता निकालना है और कार्यकर्त्ताओं को तैयार करना है। बिहार में पांचसौ अच्छे कार्यकर्त्ता मुझे अवश्य मिल सकेंगे, ऐसी मेरी उम्मीद है।" हृदय में अमिट आशा, अखंड उत्साह और यज्ञ की इस प्रज्वलित ज्वाला को लिये यह महासंत फकीर निकल पड़ा है हाथ पसारकर। उसे न तन की सुध है, न सुख की चिन्ता। जमींदारों से उसे जमीन चाहिए, संपत्तिवानों से संपत्ति का दान चाहिए, बलवानों से बल और बुद्धिमानों से बुद्धि।

आज इस होली के दिन अपने मन के शत्रुओं—मद, लोभ और मोह को क्रान्ति की इस ज्वलन्त होली में जलाकर बाबा के

इस संकल्प को पूरा करने के लिए कमर कसकर उठ खड़े हों, यही बाबा का होली का अमर संदेश है।

घूमकर आने पर जब बाबा ने वजन किया तो आशा के विपरीत आज ९२ पौंड वजन था। बावा वजन देखकर ही बोले, "तब तो खोया नहीं है।" फिर शहद-पानी का नाश्ता लेते हुए कहने लगे कि अब अपनी खुराक में मैंने दूध, दही या रस के बदले यह परिवर्तन कर दिया है, क्योंकि यात्रा में भी यह टिकेगा। पर २८० कैलोरी कम करके १२८ कैलोरी को लिया है। और अब घी भी कम करना है। डाक्टर ने तो खांसी में भी घी और शहद लेने को बताया है, पर घी खांसी में प्रायः अनुकूल नहीं होता। बाबा ने अपनी कैलोरी में कमी की, उससे उनके वजन की वृद्धि से हुई प्रसन्नता लुप्त हो गई। आशंका होने लगी कि कहीं प्रगति रुक न जाय।

दोपहर को मैंने अपने बेटे राजीव का पत्र बाबा को दिखाया। पूरा पढ़कर एक-एक अक्षर मुझे बताया कि अब उसे लिखो कि इस अक्षर को इस तरह सुधारकर लिखना और हरेक अक्षर को लिखकर उसे यह पत्र वापस भेजो तथा उसे लिखो कि जो अक्षर खराब हैं, उन्हें सुधारे। तब मैंने अपनी लिखी हुई राजू की डायरी उन्हें देखने को दी और आग्रह के भाव से कहा, "डायरी पर अपने आशीर्वाद लिख दीजियेगा।" बाबा ने सम्मति में स्नेहपूर्वक कहा, "हां, हम लिखेंगे।" और डायरी मुझसे लेकर उन्होंने अपने पास रख ली।

सम्मेलन की तैयारियां

संध्या की प्रार्थना के बाद कुछ क्षण विनोबाजी विचार में डूबे रहे। हमें लगा शायद कुछ कहेंगे। इतने में ही एक भाई दानपत्र

सुनाने के लिए खड़े हुए। उनकी आवाज सुनते ही बाबा की आंखें खुल गईं और आंकड़े सुनने के बाद वह उठ खड़े हुए। शायद विचार मन-के-मन में ही रह गये। तदनन्तर सर्वोदय-सम्मेलन की तैयारियां कहांतक हुई हैं, व्यवस्था कैसी है, आदि देखने के लिए वह उस स्थान की ओर चल पड़े। निवास से निकलते ही रास्ते में कागज के टुकड़े पड़े हुए थे, जो उनकी सूक्ष्म दृष्टि से बच न सके। देखते ही बाबा ने कहा, "जहां विद्वान रहने लगते हैं!" इस वाक्य में उनका भाव स्पष्ट था, जिसे उन्होंने इस बुरी आदत को लक्ष्य करके ही कहा था। सफाई की ओर उनका हमेशा ध्यान रहता है। हम साथ चलनेवालों ने तुरन्त ही उन कागजों को उठाकर यथा-स्थान डाल दिया।

प्रवेश-द्वार के कुछ आगे चलकर ही सामने विविध व्यवस्थाओं के लिए काम में लगे हुए कार्यकर्त्ता और सेवक दिखाई दे रहे थे। पंडाल का विशाल मैदान साफ था। मंडप खड़ा करने के लिए खंभे आदि वहां पड़े हुए थे। उससे आगे चलकर 'निवास' के लिए झोंपड़ियां खड़ी की जा रही थीं। पास में ही भोजनालय की व्यवस्था थी। यहां डेढ़ हजार आदमी एक साथ भोजन कर सकें, इसका इन्तजाम हो रहा था। और इससे आगे चलकर आती है पहाड़ी जुड़िया—सुवर्ण-रेखा—नदी की नन्हीं-सी धारा। इस धारा को बांधकर पानी का संचय किया गया है। बूंद-बूंद से तालाब भरता है। इस छोटे-से स्रोत को बांधकर पानी आठ-दस फुट तक इकट्ठा हो गया है। इसी बांध का प्रवाह प्रवाहित करने के लिए विनोबा ने इस बांध का कुदाल और फावड़े से थोड़ी-सी मिट्टी हटाकर उद्घाटन किया था। सर्वोदय की स्मृति में यह बांध हमेशा के लिए ग्रामीण जनों को लाभप्रद रहेगा। इसी कारण इसे पक्का

कर दिया गया है, जिसमें करीब दो हजार रुपया खर्च हुआ है।

यह सब देखकर वापस लौटते हुए पंडाल के ठीक सामने बना प्रदर्शनी का स्थान देखा। प्रदर्शनी तो आखिर प्रदर्शन के लिए ही होती है। अच्छी-से-अच्छी और सुन्दर-से-सुन्दर वस्तुओं का प्रदर्शन। अतः इसमें सर्वाधिक आकर्षण होना भी स्वाभाविक है। अधूरा बना हुआ स्थान भी आकर्षक लग रहा था। चारों ओर घास का छप्पर और बीच में बापू-चित्रावली का मंच, बड़ा ही मनोहारी दृश्य था। चबूतरे को देखकर विनोबा ने कहा, "यह तो मुफ्त में ही मिल गया, क्योंकि पहले से ही वह बना हुआ था।" कलापूर्ण कारीगरी से अब वह सज रहा था और अपनी शोभा से चारों ओर की शोभा को भी बढ़ा रहा था।

होली का संदेश

यह सब देखकर बाबा लौट रहे थे। सामने ही 'होली-पूर्णिमा' का चांद अपनी पूर्ण कला के साथ दीप्तिमान था। विनोबा ने पूर्ण चन्द्र को निहारते हुए कहा, "इसका वर्णन तुलसीदास की रामायण में है। होली-पूर्णिमा के दिन रामचन्द्रजी की मंडली बैठी थी। रामचन्द्रजी ने चन्द्रमा के कलंक को देखकर पूछा——मालूम है, यह कलंक क्यों है? तब हनुमानजी ने जवाब दिया——आपका प्रतिबिम्ब इसमें पड़ रहा है। "सोई श्यामता भासे।" हनुमानजी को तो सभी जगह राम-ही-राम दिखाई देते थे। निर्मल स्वच्छाकाश में उदित चन्द्र में राम का प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्बित हो रहा था, हनुमान के लिए। पूज्य बाबा के इस होली-पूर्णिमा के पावन स्मरण में भी राम बसे थे। उसीका प्रतिबिम्ब वह देख रहे थे चन्द्रमा में। रामनाममय इस सन्त के हृदयेन्दु से मानो भक्ति की

किरणें फैल रही थीं। भक्तिभाव से पूरित हम सब अपने निवास पर लौट आये।

डायरी के इन दो पन्नों को लिखते हुए मैं सोच रही हूं कि होली का दिन सफल हुआ। सुबह मिला कर्मचेतना का संदेश और शाम को पाया राम-नाम की भक्ति का प्रकाश। श्रद्धापूर्ण हृदय से भूदान के इस कर्मपथ पर हम इस महासंत के अनुगामी बनकर चल पड़ें, सर्वोदय की ओर।

शनिवार; २८ फरवरी '५३



: २२ :

भाषा का प्रश्न

भूदान-यात्रा चुनाव-मुहिम नहीं

आज प्रातः भ्रमण के समय श्री वैद्यनाथबाबू ने वाहन का उपयोग करने के अपने आग्रह को दूसरी दलील से समझाते हुए विनोबाजी से कहा, "कल आपने खास प्रचार और आम प्रचार की बात कही थी। चुनाव-आन्दोलन की तरह ज़ोर से काम करने के सम्बन्ध में भी कहा था। हम लोगों ने उसपर सोचा। हम लोगों में से कुछ भाइयों की राय है कि ऐसा करने के लिए अभी आपका पैदल यात्रा का जो क्रम है, उसकी जगह यदि वाहन का उपयोग करना स्वीकार करें तो काम में अधिक सहूलियत होगी। अभी जिस जिले में आप भ्रमण करते रहते हैं, तबतक उसमें काम चलता है। वहां से आगे बढ़ने पर वहां का काम ढीला पड़ जाता है। वाहन का उपयोग करने से लोग अपने-अपने क्षेत्र में काम करके आपको बुला सकेंगे और इस प्रकार प्रान्त-भर में घूमते रहने से सभी जगह जागृति बनी रहेगी और काम आगे बढ़ेगा। आपने यह भी कहा था कि जिस जिले में काम होगा, मैं वहां जाऊंगा, पर अभी पैदल यात्रा के क्रम में तो रास्ते में कोई ऐसा जिला पड़ जाता है, जहां विशेष काम नहीं हुआ हो तो उस मरुभूमि को पैदल पार करने में समय लग जाता है।"

बात अभी पूरी ही नहीं हुई थी कि जवाब देते हुए बड़ी दृढ़ता से विनोबा बोल उठे, "हम सब घूमने निकलते हैं तो पन्द्रह-सोलह मील चलने की हममें शक्ति होनी चाहिए और हमारे लिए तो

कोई मरुभूमि है ही नहीं, क्योंकि हमें तो प्रत्येक गांव से भूमि चाहिए। जहां भूमि अधिक मिलती हो वहां हम सीधे जायं और बीच के गांव छोड़ दें तो, समझना चाहिए, हमारा वह गांव का हिस्सा गया। और उसे लेने यदि फिर वापस आयें तो एक बार आगे जाकर वापस आना यह ठीक नहीं। इसमें शक्ति और समय दोनों खर्च होते हैं। हमें तो सतत आगे चलना है। इलैक्शन के मुहिम की तरह हमारी यह यात्रा नहीं हो सकती। यह हमने माना कि जवाहरलालजी ने कुछ महीनों में हिन्दुस्तान के इस कोने से उस कोने तक यात्रा कर ली और बड़ा इलैक्शन कैम्पेन किया, लेकिन हमारा काम उससे भिन्न तरह का है। हमें तो हर गांव में जाना है, हरेक व्यक्ति के पास व्यक्तिगत रूप से हम नहीं पहुंचेंगे तो हमारा काम नहीं होगा। और फिर चलनेवाले के लिए पांच-छः मील क्या होते हैं! उसमें तो यह शक्ति होनी चाहिए कि सुबह दो बजे उठकर निकल पड़े और सात-आठ बजे तक दूसरे गांव को पहुंच जाय।

"घूमनेवाले के लिए तो सब दिशाएं खुली हैं। वह तो रेल्व की पटरी पर चलनेवालों के लिए है कि चले चलो सीधे, न इधर जाना है न उधर।"

दबाव से कुछ नहीं चाहिए

"इसके अलावा एक बात और है। हम अपनी गति से सीधे-सरल चले जायंगे तो लोगों पर आक्रमण नहीं होगा? मैं नहीं चाहता कि किसी व्यक्ति पर दबाव पड़े या आक्रमण हो। मेरे अचानक जाने से वैसा होने की संभावना है, क्योंकि मेरे जाने पर वह आदमी यह तो कह नहीं सकेगा कि 'मालिक घरमें नहीं है।' मालिक अन्दर रहकर खुद ही ऐसा कहलाता है। मेरे पहुंचने पर

यह तो वह नहीं कह सकता। मेरे जाने से पहले लोग वहां तैयारी कर रक्खें। पहले जिसे चले जाना हो चले जायं, यह सब मैं पसन्द करता हूं। लोग टीका करते हैं कि अमुक जमींदार मेरे जाने पर वह स्थान छोड़कर चला गया, पर मैं उसे अच्छा मानता हूं। विचार को समझकर जो देता है, वही मैं लेना पसन्द करता हूं। और वह वहां से चला गया तो इसके मानी हैं कि हमने उसको जीत तो लिया है। उसने यह तो कबूल कर ही लिया है "भूमि देनी चाहिए" और इतना विचार-परिवर्तन भी काफी है। उसका थोड़ा मोह है, वह आज नहीं तो कल छूटेगा और वह जमीन देगा। पर हमें दबाव डालकर जमीन नहीं लेनी है, इसलिए जो मैं एक-एक गांव होते हुए जाता हूं, वह अच्छा ही है।

"गंगा नदी अपनी सरल गति से प्रवाहित होती हुई चली जाती है। मान लो, वह अपनी सीधी-सरल गति छोड़कर एक-एक के घर पर जाने लगे तो लोग घबरा जायंगे। इसलिए गंगा का तो सीधी-सरल गति से बहते जाना ही अच्छा है।" बाबा का कहने का मतलब यही था कि एक-एक के पास न जाकर इस पदयात्रा में गांव हों या शहर अपनी सरल-सीधी गति से चलते जाना और बढ़ते जाना ही ठीक है। पुनः उन्होंने कहा कि संन्यासी भिक्षा लेने के लिए खाने के समय नहीं जाता। यदि वह खाने के समय जाता है तो वह दाता पर आक्रमण होता है, किन्तु यदि वह खाने के बाद किसी के घर जाता है तो जो कुछ बचा होगा उसे वे दे ही देंगे और वही भिक्षा भगवान के नाम से वह ग्रहण करता है। वैसे ही हमें भी करना है।"

यह सब सुनकर वैद्यनाथबाबू बोले, "आखिर फैसला तो आपको ही करना है। हमें तो जो फैसला होगा, उसपर चलना

ही है। लेकिन आपके स्वास्थ्य का ख़याल करके मैंने यह निवेदन किया था।"

छोटे-से प्रश्न पर बाबा ने इतना सारा कह डाला और यहीं वह चुप न हुए। वाहन के नाम से और आगे चलाया, "मैं तो यहां तक मानता हूं कि हम यह जो पत्रव्यवहार करते हैं, उसमें नाहक बहुत-सा समय जाता है। एक पर्सनल आदमी यदि उस संदेश को लेकर जाय तो काम अधिक प्रभावी होगा और मेरा ख़याल है जल्दी भी होगा; क्योंकि पहले तो हम इस आशा में बैठे रहते हैं कि पत्र का जवाब आयेगा, फिर जवाब न आने पर दूसरा पत्र लिखते हैं और पता चलता है कि वह पत्र ही उसे नहीं मिला। इस तरह पंद्रह दिन निकल जाते हैं, इसलिए मेरा तो यही ख़याल है कि रेल, तार, मोटर, पेट्रोल आदि किसीका भी उपयोग न किया जाय और आदमी से काम कराया जाय। लेकिन इसके लिए कार्यकर्त्ता-वर्ग मजबूत होना चाहिए।"

हमारा लक्ष्य चालीस लाख एकड़

बाबा के विचार तो एक शब्द की टक्कर लेकर ही मानो दूसरी ओर मुड़ पड़ते थे। मजबूत बनने का ख़याल आते ही मुड़ती हुई विचारधारा बह चली—"हम मजबूत होंगे तभी तो रेगूलर रिवोल्यूशन हो सकता है। अब तो हम चार लाख से चालीस लाख की बात करते हैं। उस दिन जवाहरलालजी से जब हमने कहा तो वह कहने लगे कि उन्हें यह अच्छा तो बहुत लगता है, पर उन्हें लगा और वह मन-ही-मन समझ गये कि यह आदमी तो रिवोल्यूशनरी जैसी बातें करता है। पर 'अब तो बात फैल गई जाने सब कोई'। जैसे 'वी' पर विक्ट्री होता है, ऐसे ही चार पर चालीस लाख होना

चाहिए और घर-घर सबके मुंह पर ४० लाख की बात होगी, तब क्रान्ति सफल हुई समझेंगे।

सबका काम, सबका सहयोग

"अब तो कांग्रेस ने भी इसके लिए प्रस्ताव पास किया है। इससे सारे हिन्दुस्तान को बल मिलेगा। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि यहां जो काम हुआ है उसमें कांग्रेसवालों ने अस्सी परसेंट काम किया है। लेकिन हम तो चाहते हैं कि सब पार्टियां और ग्रुप इसमें मिल जायं। इसमें यह तो प्रि-सपोज़ीशन है ही कि सब मिलकर कंधे-से-कंधा मिलाकर चलें।" वैद्यनाथबाबू ने कहा कि प्रजा-सोशलिस्ट और कांग्रेस के सिद्धान्तों में कोई महत्त्व का भेद भी नहीं है। तब विनोबा बोले, "हां, उनका सहकार भी हमें खूब मिल रहा है। जयप्रकाश नारायणजी ने तो तीसरी बार यहां का दौरा किया है। आर. एस. एस. वाले भी मानते हैं कि यह उनका ही काम है। परसों वे लोग मेरे पास आये थे और मुझसे कह रहे थे कि 'आप तो हमारा ही काम कर रहे हैं। यह तो भारतीय संस्कृति का ही काम है।' मैंने उन्हें जवाब दिया, 'लेकिन आपका सहयोग नहीं मिल रहा है हमें।' इस तरह सबका कुछ-न-कुछ अंश इसमें है, जिससे सबके सहयोग की हम अपेक्षा कर सकते हैं।"

उदार बनकर दिल जीतें

कुछ देर तक बाबा चुपचाप चलते रहे, फिर स्वयं ही बोले, "अखबारों में पढ़ा कि बिहार-असेम्बली में एक भाई बंगला में बोलना चाहते थे, उन्हें नहीं बोलने दिया गया और इस वजह से उनके दल के जो चार-पांच अन्य सदस्य थे वे सभा से उठकर बाहर चले गये। यह मुझे अच्छा नहीं लगा। यदि उन्हें बोलने दिया जाता

तो उससे सहज ही उनका हृदय जीत लिया होता। माना कि पांच-सात मिनट अधिक लगते, पर कुछ समय की ही तो बात थी। लीगल कॉन्स्टिटच्यूशन कुछ भी हो, पर डिस्क्रिशन की पावर तो थी ही। आखिर वे माइनोरिटी के थे, कुछ कर तो सकते नहीं थे, इसीलिए वे असेम्बली से बाहर गये और फिर आये। लेकिन यह ठीक नहीं हुआ। मैं बहुत दूर तक देखता हूं।''

श्री वैद्यनाथबाबू ने बताया, ''हिन्दी और अंग्रेजी में ही बोलने का नियम है। हां, यदि इन दोनों भाषाओं में से कोई भाषा सदस्य न जानता हो तो उसे अपनी भाषा बोलने की इजाजत दी जाती है। किन्तु यदि स्पीकर को जानकारी हो कि वह हिन्दी या अंग्रेजी जानता है तो उसे इन दोनों में से ही किसी भाषा में बोलना चाहिए, ऐसा नियम है।''

फिर भी विनोबा को इससे समाधान न हुआ। वह तो बहुत दूर की सोच रहे थे। यह बात विरोध-भावना को घटानेवाली नहीं, बढ़ानेवाली है, यह तथ्य तो इसमें है ही, तिसपर उनकी एक और भावना, एक और विचार उसमें था, जिसे उन्होंने व्यक्त करते हुए पुनः कहा, ''यह ठीक है, औपचारिक रूप से जो कुछ करना था वह सब किया गया और हो गया। सबकुछ होते हुए और जानते हुए भी डिस्क्रिशन तो वहां था ही न, जिसको काम में लाया जा सकता था। उन्हें यदि बोलने का मौका दिया जाता तो उससे हानि तो कुछ न होती बल्कि लाभ ही होता। बंगला बोलते। पहले तो बहुत कम लोग उसे समझ पाते और मैं तो कहता हूं कि चार-पांच मिनट उसका तर्जुमा करके सुनाया जाता तो उसका असर और भी अच्छा होता। बिना किसी कोशिश के उनके हृदय को जीत लिया जाता।''

अंग्रेजी बनाम देशी भाषाएं

रवीन्द्रबाबू और श्री गोखले के दो उदाहरणों द्वारा बाबा अपनी बात स्पष्ट करते हुए बोले, "एक बार रवीन्द्रबाबू साबरमती आये। बापू ने उन्हें कुछ बोलने को कहा। रविबाबू हिन्दी तो जानते नहीं थे। अंग्रेजी अच्छी जानते थे या बंगला। उन्होंने बापू से पूछा, 'अंग्रेजी में बोलूं क्या ? बंगला तो ये भाई समझेंगे नहीं।' तब बापू ने उनसे कहा, 'नहीं, आप बंगला में ही बोलिये; हम आपके मुंह से अंग्रेजी नहीं बंगला ही सुनना चाहते हैं और आपके हमें शब्द थोड़े ही सुनने हैं, भाव ही तो सुनने हैं।' रविबाबू बंगला में बोले और हम लोगों ने शब्द न सही, भाव तो समझ ही लिया था।

"इसी तरह साउथ अफ्रीका में एक बार गोखले बापू के साथ एक मीटिंग में गये। वहां उन्हें भाषण देना था। हिन्दी में तो वह भाषण दे नहीं सकते थे, मराठी में भी कभी बोलते नहीं थे, इसलिए बापू से पूछा, 'अंग्रेजी में बोलूं क्या ?' बापू ने कहा, 'नहीं, मराठी में बोलिये।' तब गोखले ने कहा, 'मेरी मराठी कितने लोग यहां समझ सकेंगे ?' बापू बोले, 'कोई बात नहीं, मैं उसका तर्जुमा कर दूंगा' बापू की मराठी कैसी थी, वह भी गोखले जानते थे, इसलिए उन्होंने बापू से हँसकर कहा, 'कुछ भी हो, आप जितना बोलेंगे उसके भाव को तो मैं अच्छी तरह पकड़ सकूंगा' और बापू के आग्रह में एक विचार है। इससे अपनी स्वदेशी की प्रतिष्ठा जरूर होती है।

"हिन्दी के अतिरिक्त यदि क्षेत्रीय भाषा को अंग्रेजी भाषा से कम स्थान दिया जाय और अंग्रेजी को ही उसके मुकाबले में अधिक महत्त्व दिया जाय तो इससे बदतर गुलामी की भावना और कोई नहीं होगी। इसीलिए बंगला में न बोलने दिया, यह मुझे बहुत बुरा लगा। और बंगला भाषा का साहित्य भी कितना ऊंचा है ! किसी

भी भाषा का साहित्य आज उसका मुकाबला नहीं कर सकता। ऊंचे-से-ऊंचे साहित्य से वह टक्कर ले सकता है, ऐसा भरपूर है बंगला का साहित्य। इसे छोड़कर हम अंग्रेजी के पीछे पड़े हैं, यह हमारी गुलामी की मनोवृत्ति के अलावा और क्या है!"

एक छोटी-सी बात में भी कितना गहरा और दूरदर्शी विचार था बाबा का! वैद्यनाथबाबू ने फिर कहा, "पर सरकार ने अभी अंग्रेजी भाषा को ही मान रक्खा है, तो क्या किया जाय?"

निवासस्थान पर हम पहुंच गये थे, अतः समाप्त करते हुए बाबा ने कहा, "अभी मैंने इस बारे में बहुत सोचा नहीं है; पर जितना सोचा उसपर से मुझे लगा कि यह ठीक नहीं हुआ।"

होली का रंगारंग

आज धुलैंडी है। चारों ओर रंगारंग है। सुबह घूमते समय एक ग्रामीण भाई के कपड़े पर रंग देखकर बाबा बोले थे, "अच्,छा रंग दिखाई देने लगा!" यहां होली का रंग दिखाई देता था, फिर भी उत्तरप्रदेश-जैसी बहार नहीं थी। इसलिए मैंने बाबा से कहा, "लेकिन उत्तरप्रदेश में होली अधिक धूमधाम से मनाई जाती है।" बाबा बोले, "हां, गंगा के किनारे ज्यादा मनाई जाती है। बंगाल में भी मनाते हैं। बंगाल में वैष्णवों की यह चैतन्य-पूजा है, जैसे दशहरे पर वे लोग देवी की पूजा करते हैं। लेकिन यहां यह वसन्तोत्सव है। 'वसंते वसंते ज्योतिष्ठः'—यह ज्योतिर्यज्ञ है, ऐसा हमने माना। कूड़ा-कचरा भी जल जाता है और खाद भी तैयार हो जाती है। इसका बहुत अच्छा स्वरूप हो सकता है, यदि सुधारक इसमें हिस्सा लें।"

निवास पर रंग से रंगे हुए कुछ लोग और बच्चे बाबा के

पास आये। पूरी वानर-सेना थी। बाबा को यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। उनके हृदय में इस दर्शन से आनन्द के बजाय दुःख हो रहा था। उन लोगों ने 'रघुपति राघव राजाराम' गाया और उसके बाद बाबा बोले, "सब बन्दर-जैसे लग रहे हैं।" फिर उनको सम्बोधित करते हुए कहा, "आज जो यह रंग आपने लगाया, यह बाजार का रंग है न ? रंग बनाने में अपने यहां जो फूल होते थे, उनका ही रंग बनाते थे; पर ये तो बाजार के रंग हैं और जहरीले भी हैं, ये धुल भी नहीं सकते। साल-भर आप इन्हीं कपड़ों को पहनेंगे। इसलिए इस तरह के रंग से खेलना न तो स्वास्थ्य की दृष्टि से ही ठीक है और न सफाई की दृष्टि से ही।

"होली जैसा त्यौहार तो एक सद्भावना का प्रतीक है। यह खेल एक प्रेम की चीज है। इसका यह जो रूप बना दिया है, वह अच्छा नहीं है। इसलिए मैं आपसे कहूंगा कि इसके असली महत्त्व को समझो और इसके स्वरूप को बदलो। इस त्यौहार को इस तरह से मनाओ, जिससे मन प्रसन्न हो और आपस में सद्भाव और प्रेम-भावना पैदा हो। इस तरह के रंग-कीचड़ आदि से खेलना तो बहुत ही बुरी चीज है। इसे बन्द करना चाहिए और बहुत ही प्रेमपूर्वक अच्छी तरह इसे मनाना चाहिए। आगे से आप सब ऐसा नहीं करेंगे, ऐसी मैं उम्मीद करूंगा।" और यह सब सुनने के बाद सब लोग बाबा को प्रणाम करके चले गये। उन लोगों के चले जाने के बाद भी बाबा हमें कहते रहे, "देखो न, कैसे भद्दे लग रहे थे सब ! इतने अच्छे कपड़े भी रंग गये, जिन्हें अब सारे वर्ष ये पहनेंगे। न मालूम कितने दिन तक चमड़ी का रंग भी छुटाये नहीं छूटेगा। सच ही होली का यह असली रूप नहीं है। होली का असली महत्त्व तो है मन का संस्कार।"

खांसी और गले में विकार

दोपहर को डा० खान टाटानगर से बाबा को देखने आये। बाबा को गले की बहुत शिकायत है और गले के कारण ही उनकी परेशानी बढ़ जाती है। तभी तो बाबा कहते हैं, "मेरा गला सात्त्विक है। यह तो द्वारपाल का काम करता है। थोड़ी भी प्रतिकूलता दिखी कि झट शिकायत करना शुरू कर देता है।" आज डाक्टरसाहब ने भी कहा, "आपका गला क्रोनिक है, एकदम लाल है। छाती-वगैरा तो सब ठीक हैं, केवल गले में ही कफ है और इसी वजह से निमोनिया वगैरा होने का भी डर रहता है।" बाबा डाक्टर की बात सुन रहे थे। उन्हें खांसी आई तो हमें कहने लगे, "यह संतरा बोल रहा है।" बाबा ने गले की वजह से ही घी खाना बहुत कम कर दिया है। इसकी वजह से उनकी २८० कैलोरी खुराक में कमी हो गई। डा० खान ने कहा, "घी लेने में तो कोई हर्ज नहीं है।" बाबा बोले, "अभी दो-तीन दिन से छोड़ा है, कुछ अनुकूल दीखता है, ज़रा अच्छे होने पर फिर लेना शुरू करेंगे।" तब डाक्टर ने कहा, "घी खराबी नहीं करता, किन्तु घी शुद्ध होना चाहिए, किसी तरह का इन्फेक्शन उसमें नहीं होना चाहिए।" "हां, यह तो ठीक है" कहकर बाबा चुप हो गये। डाक्टर ने फिर पूछा, "मैंने जो दवा इन बहन के साथ भेजी थी, वह ली है न ? आप कौन-सी लेना चाहेंगे ? चॉकलेट-कोटेड या दूसरी ?" बाबा बोले, "अभी तो कैसी भी लेने की इच्छा नहीं है।" "पर बाबाजी, गला कैसे ठीक होगा ?" डाक्टरसाहब ने आग्रह किया और मुझसे पूछा, "आपने दवा दी है न ?" मैं बोली, "मैंने तो कल शाम को ही बाबा को आकर कहा था, पर वह बोले, "न हमें बिटर लेनी है न मधुर।" बाबा तो हँस ही रहे थे। तब डाक्टर साहब ने अपने सामने

ओरिओमाइसिन दवा मंगाई और उसकी एक गोली बाबा को दी। डाक्टर के आग्रह के सामने बाबा अनिच्छा होते हुए भी मना न कर सके। डाक्टर ने कहा, "किसी बात में यदि आप हमारे गुरु हैं तो मेडिकल में हम आपके गुरु हैं। यदि आप कहना नहीं मानेंगे तो हमें 'सिट डाउन स्ट्राइक' करनी पड़ेगी।" यह सुनकर बाबा के साथ सभी खूब हँसे।

डांक्टर ने फिर पूछा, "सुना है, आप बाहर सोते हैं।" बाबा ने जवाब दिया, "हां, बाहर ही सोता हूं। उससे तो नींद अच्छी आती है। कल मैंने इन लोगों को एक किताब से पढ़कर सुनाया भी कि बाहर सोने से गला खराब नहीं होता। सर्दी तो अन्दर सोने, खुली हवा न मिलने, अधिक कपड़े आदि पहनने से होती है।" डाक्टर ने कहा, "यह तो ठीक है कि सरदी में बाहर सोना नुकसान नहीं करता पर; ओस में सोना नुकसान करता है। उसमें मौसम में, हवा में जो एकाएक परिवर्तन होता है, वह ज्यादा नुकसान करता है। कल ही मैंने इन बहन को बताया था कि हम लोग रात को १० बजे बाहर कुर्सियां डालकर बैठे थे। जब कुर्सी उठाई तो उसके नीचे का हिस्सा तो सूखा था, बाकी सब भाग गीला था। इसलिए इस तरह के परिवर्तन से निमोनिया होने का भी डर रहता है।" बाबा सुनकर और समझकर भी अपनी बात रखकर ही मानो हठ करते हुए और मुस्कुराते हुए बोले, "पर मच्छरदानी लगाता हूं न?" डाक्टर ने कहा, "मच्छरदानी से पूरा बचाव नहीं होता है। कपड़ा होने पर भी इतनी अधिक ओस पड़ती है कि उसका असर होता ही है।" मच्छरदानी पतली है, यह सुनकर बाबा ने मोमजामा उसके ऊपर डालने का सुझाव रक्खा। पहले वैसा करते भी थे और आखिर डाक्टर से मनवाकर ही छोड़ा। साथ ही डाक्टर ने

जो एकाएक परिवर्तन की बात कही थी उसका जवाब भी दिया, "इसका मतलब है रोज बाहर सोना चाहिए।" डाक्टर ने पुनः कुछ समझाने की कोशिश की, "आजकल रात में एक ही साथ तीन बार मौसम बदलता है। पहले गर्मी होती है, फिर सर्दी और फिर ओस। गर्मी में खुले रहते हैं ओर जब सर्दी शुरू होती है तो नींद में अचानक ही उसका असर हो जाता है।" बाबा ने यह सुन लिया और केवल 'हां' कहकर चुप रहे।

बाहर सोने की बात में तो डाक्टर न जीत सके। तब डाक्टर ने कहा, "घूमना तो बन्द है न, बाबाजी ?" पहले तो बाबा बच्चों जैसी नटखट हँसी हँसे, फिर डाक्टर से कहने लगे, "घूमना तो चल ही रहा है अभी।" डाक्टर खीझे तो सही, पर बाबा के आगे करते क्या ! तब कहने लगे, "आप नहीं मानेंगे तो अब राजेन्द्रबाबू ७ तारीख को आवेंगे तब उनसे अपील करनी पड़ेगी। आप हमारी तो मानते ही नहीं हैं।" बाबा हँसी में ही सब टालते रहे और डाक्टर ने भी हँसते-हँसते संभाल रखने की, दवा लेने की और बाहर न सोने, कम घूमने आदि की हिदायतें देकर विदा ली।

रविवार; १ मार्च '५३



: २३ :

दुर्भावनाओं का शमन

दुर्भावनाओं की उपेक्षा

दोपहर को अनुग्रहबाबू आये थे। बाबा से एकान्त में काफी देर तक उनकी बातें होती रहीं।

उनके जाने के बाद गया से कुछ कार्यकर्त्ता (बाबा की पार्टी के साथी) आये, जो भूदान के काम के लिए गया गये हुए थे। वे लोग अपने-अपने अनुभव सुना रहे थे। एक भाई ने कहा, "हम तो खेत में जाकर जमीन लेते थे और दानपत्र लिखाते थे।" एक दूसरे भाई ने अपना एक मीठा अनुभव बाबा को सुनाया, "हम एक आदमी के पास गये और पूछा, 'विनोबा का नाम सुना है?' तो उसने जवाब दिया 'नहीं'। फिर एक ही सांस में बोल गया, 'मेरे पास तो जमीन-वमीन कुछ है नहीं।' इतना सुनते ही बाबा खूब जोर-से हँसे। विनोबा का नाम ही नहीं, संदेश भी उन तक पहुंच चुका था, जिसे छिपाने पर भी वह न छिपा सका।

बाबा ने फिर जिलों और उनके लिए तय किये गए कोटा की योजना का एक कागज उनको दिया और बोले, "अब करो खूब काम; अब मत कहना कि योजना नहीं है। मैंने तैयार कर रक्खा है सब।"

संध्या की प्रार्थना के बाद प्रवचन देते हुए बाबा ने कहा, "भूदान-यज्ञ के काम में अनेक प्रकार के अनुभव मिले हैं। भूमि का दान मिला है। उसका जितना महत्त्व है, उससे कम महत्त्व इस अनुभव का नहीं है, जो हमें इतने समय के काम से मिला है। सब

लोग जानते हैं कि बिहार के आम समाज में बहुत श्रद्धा है। यह जाहिर है कि बिहार में अच्छे कार्यकर्त्ता जितनी तादाद में उपलब्ध हैं, शायद उतने दूसरे किसी प्रान्त में नहीं मिलें। मुझे भिन्न-भिन्न प्रान्तों का जो अनुभव हुआ है, उसपर से मैं यह कह सकता हूं। लेकिन कई कारण हैं, जिनसे कार्यकर्त्ताओं में पूरे एकदिल से काम करने का अभी तक माद्दा नहीं आया है, पर हम अपने काम में अत्यन्त एकाग्र हो जायं तो उसका स्पर्श सबको होगा और उस कार्य का स्वरूप भी ऐसा होगा जिससे आहिस्ता-आहिस्ता लोग अपने छोटे-मोटे भेद-भावों को भूल जायंगे।

"यह सोचने की बात है कि जब हम कहीं हीन भावना देखते हैं तो उसके लिए पूर्ण निषेध करना अच्छा होता है या और कोई दूसरा तरीका है, जिससे उसका प्रतिकार हो सकता है। मैंने अपने अनुभव से देखा है और जहांतक मैंने शास्त्रों को समझा है, वहांतक उनका भी रुख ऐसा ही देखा कि दुर्भावनाएं स्वतंत्र हस्ती रखती ही नहीं, उनमें स्वतंत्र ताकत रहती ही नहीं। लेकिन जब हम उनका निषेध करने जाते हैं तब हम नाहक उनको महत्त्व देते हैं और उससे उनको बल मिलता है। इसलिए दुर्भावनाओं की तरफ उपेक्षा-बुद्धि रखकर अगर काम करते हैं तो उनका बल क्षीण होता है। इसलिए अक्सर मैं जहां ऊंची भावना का अभाव देखता हूं, वहां उसपर टीका नहीं करता और उसका निषेध भी, जहांतक हो सकता है, नहीं करता। अगर करना भी चाहता हूं तो उस मनुष्य के सामने करता हूं, उसके पीछे नहीं करता। उसके पीछे तो जहांतक हो सकता है उसके गुण ही गाता हूं। गुण तो हरेक मनुष्य में होते ही हैं। गुणगान करना तो भक्तों का लक्षण है। भक्त हमेशा गुणगान करता है, निन्दा नहीं करता।"

हरि-भावना

"उपेक्षा के अलावा और भी एक वस्तु है, जिससे दुर्भावनाओं का रूपान्तर सद्‌भावना में होता है और वह है हरि-भावना। यह हमें समझना चाहिए कि मनुष्य की भिन्न-भिन्न प्रकृतियां होती हैं। उनका प्रतिकार दुर्भावना से नहीं होगा, बल्कि हम उनके भिन्न-स्वरूप को देखकर अगर सद्‌भावना से काम लें और उनके हृदय का आविर्भाव समझें तो बहुत जल्दी सुधार होता है। माता अपने बच्चों के लिए, चाहे वह कितना ही दुर्व्यसन रखता हो, आशा रखती है कि वह सुधरेगा, आशा ही नहीं करती बल्कि प्यार भी करती है। यदि ऐसे ही हम दुनिया को समझें और समझें कि एक नाटक हो रहा है, उसके नानारूप होते हैं, रूप बाहरी होते हैं—कोई सत्त्वगुणी होता है, कोई रजोगुणी और कोई तमोगुणी तो इस सद्‌भावना का प्रवेश हो सकता है और सुधार जल्दी हो सकता है। इसलिए मैं निषेध नहीं करता, गुणगान करता हूं और हरि-भावना पैदा करने की कोशिश करता हूं। दूसरी बात है कि छोटे-छोटे विचार, संकुचित विचार स्वयमेव खत्म होते हैं, अगर हम बड़ा काम उठा लें। हम बड़ा संकल्प करते नहीं, इसलिए भगवान की मदद नहीं मिलती है। छोटे-छोटे कामों में भगवान की मदद की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिसमें भगवान को अपनी मदद की आवश्यकता होती है और जहां आवश्यकता होगी, वहां वह मदद के लिए हमेशा तैयार होता है। छोटे कार्यक्रम अगर तैयार करें तो हम अपनी छोटाई भूल नहीं सकते। परमेश्वर का नाम लेकर अगर हम बड़े काम उठा लें तो दुर्भावना या अल्प भावना टिकती नहीं, उससे उनका विस्मरण होता है।

तीन महत्त्वपूर्ण बातें

"तीन बातें मैं आपके सामने दोहराऊंगा—एक तो दुर्भावना का नाश, निषेध न करते हुए, उसकी उपेक्षा से करना चाहिए। हमें दुर्भावना को नहीं देखना चाहिए, बल्कि उसके अन्तस्तल में जो हरिरूप से है, उसे प्रधान स्थान देना चाहिए और यह ऊपर का आभास है—इस तरह की बुद्धि रखनी चाहिए। इसे ही मैं हरि-भावना कहता हूं।

"दूसरी बात—कोई कार्यक्रम हमारे सामने होना चाहिए, जिसमें भगवान की मदद की भी आवश्यकता होगी और छोटी-छोटी बातों की गुंजाइश भी नहीं होगी। एक वस्तु का निषेध करने में उससे अधिक श्रेष्ठ वस्तु रखने से हीन वस्तु स्वयमेव खत्म होती है। यदि हम बुरी चीज का जप किया करें तो उससे हम ऊंचे नहीं उठते, बल्कि उससे और नीचे गिर सकते हैं; क्योंकि चित्त को गिरावट का ध्यान रहता है। चित्त का लक्षण है कि जैसी भावना होती है, वैसा ही कर्म बनता है। मनुष्य का स्वरूप कर्म से नहीं बनता है, वह ध्यान और भावना से बनता है। इसलिए प्रतिकार की भावना से ही क्यों न हो, बुराई की भावना रही तो बुराई को बल मिलता है और हम गिरते हैं, चढ़ते नहीं। इसलिए परदर्शन होना चाहिए। मैंने कल्पना रक्खी है कि भूदान का जो कार्यक्रम है वह इतना महान है कि इस कार्यक्रम को करने में हमें कदम-कदम पर ईश्वर का नाम लेना होगा। उसके अनेक रूप हमारे सामने खड़े होंगे और ईश्वर हमारी परीक्षा लेगा—जमीन देने से इन्कार करनेवालों के रूप में, जमीन हासिल करनेवालों के रूप में, अच्छे तरीके से हासिल करनेवालों के रूप में, क्रान्ति को गलत रूप से करनेवालों के रूप में, मत्सर-बुद्धि से काम करनेवालों के रूप में।

तो ऊपर से छिलका उतारकर हमें काम करना चाहिए। मत्सर-बुद्धि से काम किया तो भी कोई हर्ज नहीं, किसी भी उद्देश्य से क्यों न हो अगर अच्छी चीज का स्पर्श हो गया तो आगे दुरुस्त हो जायगा। इस तरह ध्यान करने का मौका इसमें आयेगा। देनेवाले को भी हम भगवान् के रूप में पहचानें और न देनेवाले को भी हम ऐसे ही पहचानें। मैंने यह बात पहले ही, जब भूदान का काम आरंभ किया था, स्पष्ट की थी।

"तीसरी बात मुझे यह कहनी थी कि जो शख्स हमारा विचार पूरी तरह सुनकर और जानकर भी जमीन न दे उसका हमें दुःख नहीं होगा, बल्कि हम ऐसा समझेंगे कि वह आज नहीं कल देगा। उसने हमारा विचार समझ लिया, यही काफी है। इसके विपरीत यदि वह हमारे विचार को बिना समझे जमीन देता है तो उससे मैं खुश नहीं हूं। और यही भावना चित्तशुद्धि को बढ़ाती है। हमें अपना खुद का स्मरण करने का मौका न मिले तो चित्तशुद्धि होती है और बाहर के महान् कार्यक्रम मिलें तो चित्तशुद्धि सधती है। इसलिए मैं उम्मीद करूंगा कि हमारे कार्यकर्त्ता जब इस कार्य-क्रम को उठा लेंगे तब उनके दोष स्वयं क्षीण होंगे और गुणों का उत्कर्ष होगा। यह मैं अपने अनुभव से कहता हूं। दो साल पहले जितने दोष मुझमें थे उतने आज नहीं हैं और जितने गुण तब नहीं थे उतने आज हैं। यह सारा परीक्षण मैंने बहुत किया। मैंने देखा कि मैं अपने भगवान् के नजदीक बहुत वेग से जा रहा हूं। यह मुझे अनुभव हो रहा है तो दूसरों के लिए भी मैं मानता हूं कि उन्हें भी जो इस काम को उठायेंगे, यही अनुभव आयेगा।

छोटे रहकर बड़ी बात साधें

"अब हम छोटी बात नहीं बोलेंगे। वैसे छोटी बात तो पहले

भी नहीं बोलत थे। पहले चार लाख की बात बोलते थे, अब जितने दिन बिहार में रहेंगे चार लाख की बात नहीं बोलेंगे, बल्कि यह बोलेंगे कि बिहार की कुल जमीन का छठा हिस्सा मिलना चाहिए और वह लाखों एकड़ जमीन होती है। हम तो परमेश्वर का नाम लेकर इसे करेंगे और जितनी ताकत इकट्ठी कर सकते हैं, काम में इकटठी करने की कोशिश करेंगे। जो मेरे मित्र हैं, उनसे मैं कहना चाहता हूं कि वे अपनी सर्विस छोड़कर इसके लिए तैयार हो जायं, अपनी छोटी-छोटी संस्थाओं को छोड़ दें, अपने कार्य को मुल्तवी रक्खें और व्यक्तिगत कार्यों को भुला दें तथा कम-से-कम १९५७ तक अपना जीवन दें, फिर देखा जायगा। क्रान्ति दो दिन या महीने-भर काम करनेवालों से नहीं होती, बीच-बीच में सार्वजनिक काम करनेवालों से नहीं होती, बल्कि जीवन-समर्पण करनेवालों से होती है। यह स्वराज्य हमें ऐसा मिला है कि वह जीवन-दान की अपेक्षा करता है। इस भावना से हम यदि इस काम में लग जायं तो एक ताकत हमें मिल जायगी। आज तो हम बहुत छोटे हैं, पर इस कार्य के स्पर्श से हम बड़े होंगे। बड़े तो हम नहीं होते, पर जो बड़ी ताकत हममें हैं वह उसमें प्रकट हो जायगी, पर हम छोटे रहेंगे। उसमें जो मजा आयेगा वह किसी भी दूसरी बात से नहीं आयेगा। छोटे रहेंगे और हाथों से बड़ा काम करेंगे। यही भक्तों का लक्षण है। यह लक्षण हममें प्रकट होगा, ऐसी मैं उम्मीद करता हूं।

"आज गया से कुछ कार्यकर्त्ता आये। छोटे-छोटे लोग हैं। नाम तो उनका नहीं हुआ, पर उनके हाथ में ताकत थी, हृदय में श्रद्धा। हृदय-शुद्धि का अनुभव हुआ। चीज खाने को मिले और चुपचाप रसास्वाद करें, इससे बढ़कर और क्या आनन्द हो सकता है! छोटे-

छोटे लोग, परमेश्वर का नाम जिनके पास है उनका कार्य लोगों ने देख लिया। जो प्रत्यक्ष दर्शन ज्ञान से होता है वह श्रद्धा से भी होगा। जो कार्य राम से हुआ है वह हनुमान से भी हुआ है। राम से काम होता है, उनके ज्ञान के कारण; हनुमान से काम होता है, उसकी श्रद्धा के कारण। मैं तो सोच रहा हूं कि जहांतक मेरे विचारों को लोग समझें वहांतक उनको यही सलाह देनेवाला हूं कि इस काम में अपनेको भूल जायं और सर्वस्व का दान दें, जो मुख्य काम है। उसके लिए तो बापू ने आदेश दे रक्खा है कि 'करो या मरो।' वह आदेश अब भी अधूरा है। करना भी बाकी है और मरना भी बाकी है। अभी सब बाकी है।"

सम्मेलन की चर्चा

प्रार्थना के बाद सब उठने लगे। अनुग्रहबाबू सामने ही बैठे थे, सम्मेलन की तैयारी अब हो रही है, इसीको लक्ष्य करके बाबा बोले, "अब कुछ तैयारियां हो रही हैं। चार दिन पहले पानी नहीं दीखता था, अब पानी तो दीखता है।"

अनुग्रहबाबू ने हँसकर कहा, "हमारा सब काम आखिर में ही होता है। १९२२ में बिहार में जब कांग्रेस हुई थी तब पैसों का कोई इन्तजाम नहीं था, बैंक से उधार लेने की बात थी। हम पांच आदमियों की समिति बनी। पैसा इकट्ठा करने के लिए और हमको गांव-गांव में उसके लिए चक्कर लगाना पड़ा। उस समय तो आवागमन की भी सुविधा नहीं थी। पांव से, बैलगाड़ी से जितना घूम सके, घूमे और पैसा इकट्ठा किया। लेकिन उस जमाने में हम जहां जाते थे वहां मिलता भी था। आखिर में हमें पैसा मिला और बैंक से रुपये नहीं उठाने पड़े। लेकिन आखिर तक हमको डर था कि कहीं बैंक से रुपये उधार लेने ही न पड़ें और आखिर में हम

अपने काम में सफल हो गये।

"सन् ३० में भी हमको काफी आत्मविश्वास रहा और ४२ में तो कमी रही नहीं।"

बाबा हँसकर कहने लगे, "तो ५३ में बढ़ना ही चाहिए। यज्ञ में तो आहुति मांगते हैं।"

अनुग्रहबाबू बोले, "यहां तो आप बैठे हुए हैं ही। सब कुछ हो ही जायगा। रामविलास शर्मा कह रहे थे कि सेवापुरी में आपके आगमन के पहले खूब आंधी-पानी आया और जो कुछ बना रक्खा था सब उड़ गया। आपके पहुंचते ही सब शांत हुआ और काम भी सब अच्छी तरह पूरा हुआ, पर जाते ही फिर सब टूट गया।"

सब हँस रहे थे कि एक भाई ने कहा, "लेकिन यहां का काम तो मुस्तकिल करके जायंगे।"

अनुग्रहबाबू खुश होकर बोले, "यह तो बड़ी अच्छी बात है!"

सर्वोदय की स्मृति में यहां पानी का जो पक्का बांध बंधा वह सच ही इस गांव के लिए 'मीठी विरडी' मरुभूमि में हरे वृक्ष की नाईं सुखदायी और फलदायी रहेगा।

कुछ अपनी बात

बातचीत के बाद बाबा वहीं चक्कर लगा रहे थे। उनके डेस्क पर ही चि० राजीव की डायरी रक्खी थी, जो मैंने बाबा को देखने और चि० राजीव के लिए डायरी पर आशीर्वाद लिखने के लिए दी थी। बाबा ने उसपर अपना आशीर्वाद लिख दिया था। डायरी का उल्लेख करके मैंने पूछा, "आपने देखी? कैसी लगी आपको?" विनोबा बोले, "हां, मैंने देख ली है। अच्छी है, तुम्हारा विचार मुझे अच्छा लगा। इससे बालक के जीवन का चिंतन भी होता है।" बाबा ने डायरी पर लिखा था, "पूज्य राजेन्द्र-

बाबू ने जो लिखा है, हम भी वही कहते हैं।" मैंने कहा, "आज आपने ठीक किशोरलालभाई जैसा किया। उन्होंने भी उसकी वर्षगांठ पर उसकी डायरी में आशीर्वाद के रूप में ऐसा ही लिखा था, "पूज्य राजेन्द्रबाबू का उपदेश मानो !" हर वर्ष राजू अपने दादाजी (राजेन्द्रबाबू) से अपनी वर्षगांठ पर आशीर्वाद पा सका है और लिखा सका है, पर आज विनोबा और किशोरलालभाई के इन आशीर्वादों को देखकर मैंने सोचा, कितना साम्य है इन दोनों के विचारों में !

अपनी परीक्षा के सम्बन्ध में मैं बाबा के विचार जानना चाहती थी। अतः अपने दिल्ली वापस जाने के बारे में मैंने बाबा से कहा, "मेरा विचार है कि १२ ता. को नीमडी तक आपके साथ जाकर १३ को वहां से पटना होते हुए दिल्ली चली जाऊं। आपका क्या आदेश है ? अगले महीने में मेरी बी० ए० की परीक्षा है।" बाबा बोले, "हां, ठीक है, एक महीना तुम्हें परीक्षा के लिए मिलेगा समझो।" मैंने फिर कहा, "मैं व्यस्त तो इतनी रहती हूं, पर परीक्षा के निमित्त कुछ अध्ययन हो ही जाता है, इसलिए परीक्षा के पीछे पड़ी हूं। यद्यपि जैसे अभी आपके पास दिन बीत रहे हैं, उन दिनों में जितना ज्ञान और अनुभव हासिल होता है वह तो परीक्षा के लिए अनेक पुस्तकें पढ़ने पर भी मिल नहीं सकता, किन्तु गृहस्थ-जीवन और आफिस की जिम्मेदारियों में परीक्षा के बहाने ही कुछ पढ़ लेती हूं।" बाबा ने सम्मतिसूचक स्वर में कहा, "यह तो है ही, इससे चित्त की एकाग्रता होती है।"

काफी समय हो गया देखकर मैं बाबा को छोड़कर अपने कमरे में आई। बाबा भी अपने अध्ययन-चिंतन के लिए बैठ गये थे।

सोमवार; २ मार्च '५३

: २४ :

स्थानीय प्रेरणा और कार्य

सुबह घूमने के लिए बाबा निकले तो सही, पर चलने में अधिक स्फूर्ति नहीं थी। उन्हें देखकर मैंने कहा, "क्यों तबियत कैसी है आज आपकी ? अभी भी थकावट है क्या ?" बाबा ने कहा, "हां, वैसे ठीक है, बिल्कुल अच्छी तो नहीं है, बीच की है।"

चलने में आज गति कम थी। ओस गिर रही थी। प्रभाकरजी बोले, "हम ओस के नीचे चल रहे हैं।" बाबा ने आकाश में घिरते हुए बादलों को देखकर कहा, "वर्षा की तैयारी है, ये पर्वत सब बादलों को खींच लेते हैं। यहां तो देखते हैं, कभी-कभी एक ही दिन में मौसम के तीन प्रकार होते हैं।"

सामने पर्वतमाला की ओट से सूर्यनारायण निकल रहे थे। उसीको मुग्ध दृष्टि से देखते हुए हम चले। कुछ दूर चलकर ही बाबा लौट पड़े। एक मील सवा फर्लांग ही अभी तो चले थे।

संस्था नहीं, व्यापक शक्ति

लौटते समय सामने से वैद्यनाथबाबू आ रहे थे। उन्हें देखकर बाबा बोले, "आज हमने आपको बहुत चलने से बचा दिया।" फिर वैद्यनाथबाबू ने चांदील ग्राम में कुछ कार्य चलाने की बात निकाली। उन्होंने कहा, "सर्वोदय-सम्मेलन की स्मृति में यहां कोई काम चलाने की बात है। यदि यहांवाले उसके लिए तैयार न हों तो हमारी ओर से ही, जैसे आदिवासी सेवा-मंडल है, ऐसी कोई संस्था यहां खोली जाय तो कैसा ?" बाबा यह बिल्कुल नहीं चाहते थे। उन्होंने इसके लिए स्पष्ट मना किया और बोले, "ऐसा हम

नहीं करेंगे। यदि यहांवाले ही स्वयं अपनी स्फूर्ति या प्रेरणा से कुछ काम करते हैं तो ठीक है, नहीं तो फिर आदिवासी सेवा-मंडल द्वारा ही यदि संस्था खोलने की बात है तब तो वह कहीं भी खोली जा सकती है। लेकिन मैं कोई संस्था नहीं खोलना चाहता। संस्थाएं तो दुनिया में बहुत हैं और संस्था का एक सीमित विकास होता है, जहां पहुंचकर उसकी प्रगति रुक जाती है। इसके अलावा यदि बाहर की मदद से ही यहां कोई संस्था खुले तो फिर हम उसके लिए लोक-सेवक संघवालों को ही लेंगे। हमें अपनी ताकत को बढ़ाना चाहिए। उन लोगों को हमें अपने में मिला लेना चाहिए। इससे हमारी ताकत बढ़ेगी।

"हिन्दूधर्म सबसे प्राचीन है। वैदिक काल से ही, लगभग चार हजार बरस हुए अनेक आक्रमण इसपर हुए, पर सबको हिन्दू-धर्म ने अपने में मिला लिया। यह हिन्दूधर्म की जीनियस है। बुद्ध भगवान् हुए, उन्हें इतने ऊंचे चढ़ा दिया। महावीर जैन हुए। उन्हें ही लोग मानने लगे। जैनों के साथ तो शादी-व्यवहार आदि भी हिन्दुओं ने शुरू कर दिया। नानक, कबीर वगैरा ने मुसलमानों को भी अपने में मिलाने की बहुत कोशिश की, पर उनकी सत्ता जबरदस्त थी। उस सत्ता के कारण ही वह मिल न सके, फिर भी काफी मिले।

"तो मेरा कहना इतना ही है कि हमें अपनी शक्ति को व्यापक बनाना है। आदिवासी मंडल ही इसे चलाये, उससे भी हमारी ताकत नहीं बढ़ेगी। वह तो हमारी संस्था है ही। हमारा चरखा-संघ है, उसके अध्यक्ष हैं जाजूजी। ग्राम-उद्योग संघ अभी बना, उसमें भी जाजूजी। तो शक्ति व्यापक नहीं बनी, इसलिए आदिवासियों का ही यदि सवाल है तो मैं झारखण्डवालों को

उभारूंगा और कहूंगा कि तुम काम उठाओ, हमारी ये दो-चार शर्तें और बातें हैं, जैसे सत्याचरण, खादी पहनना इत्यादि। इस तरह हम उनको अपने में लेकर अपनी ताकत बढ़ा सकेंगे।

"एक दूसरी बात है, यदि यहां गांव में हमारी ओर से संस्था खोलना है तो यहां से पांच मील पर 'नीमड़ी-आश्रम' है। सुबोध-बाबू और बासंती उसे चलाते हैं। वे भी पूछ सकते हैं कि यदि आप-की ही ओर से बच्चों के लिए संस्था खोल रहे हैं तो वहां अलग संस्था खोलने की अपेक्षा यही जो बनी-बनाई संस्था है उसे ही मदद क्यों नहीं देते ?"

वैद्यनाथबाबू ने कहा, "लेकिन यहां के बच्चे तो वहां पढ़ने नहीं जा सकते। और आप तीन महीने से यहां हैं, उसकी प्रेरणा और प्रभाव से यहां कुछ काम शुरू हो जाय तो अच्छा।"

बाबा तो इसके लिए ज़रा भी राजी थे ही नहीं। उन्होंने पुनः यही कहा, "यदि मेरे रहने के प्रभाव या प्रेरणा से कुछ काम करना हैं तो यहांवाले करें, नहीं तो कोई जरूरत नहीं। मैंने एक-दो बार गांववालों को कह भी दिया है कि वे अपने बल पर खड़े हों, फिर थोड़ी-बहुत सलाह-मशविरा के तौर पर या एकाध आदमी की सेवा की जरूरत हुई तो हम मदद दे सकते हैं, क्योंकि यहांवाले काम कैसे करना यह तो नहीं जानते, उसके लिए मार्गदर्शन की जरूरत होगी और वह हम दे सकेंगे। पर काम तो यहांवालों को ही करना है। दो-चार आदमी इसके लिए तैयार हुए भी थे, पर मेरी सत्य बात सुनकर सब भाग गये। एक बनवारीलाल हैं, उनके हृदय में श्रद्धा का कुछ प्रवेश हुआ, ऐसा लगता है। वह अकेले भी यदि तैयार हों तो भी छोटा-सा काम हो सकता है।"

"यहां जो साधूबाबा हैं, उनका विशेष आकर्षण मुझे था।

उनका सहज उपभोग हो जाता। स्वच्छ, सरल और निर्मल हृदय के हैं। विद्वान भी हैं। लेकिन यह सब होना गांववालों की अपनी स्फूर्ति से ही चाहिए। इसलिए मैं अब अधिक आग्रह नहीं करूंगा। स्वयं-प्रेरणा से जो काम होता है, वही टिकता है और उसीका विकास होता है। प्रेरणा नहीं होती तो मैं यह भूदान-यज्ञ शुरू नहीं करता। परिस्थिति ने मुझे बताया कि इसकी जरूरत है और मैंने इस काम का स्वयंभूत प्रेरणा से आरम्भ कर दिया। प्रेरणा को फिर हिम्मत मिली लोगों के सहयोग से। यदि यह प्रेरणा न हुई होती और फिर भी मैं काम करता तो इसमें अहंकार आ जाता। अपने बल से मैं कर तो लेता, उसे चलाता भी, पर वह अहंकारी वृत्ति से। हृदय-परिवर्तन में तो हिम्मत की जरूरत है। अब अहंकार को बनाये रखने के लिए ध्यान उसीमें लगा रहता। यदि अब भी हम काम न कर सकें तो समझना चाहिए हममें हिम्मत नहीं है।

बापू सम्प्रदाय या संस्था नहीं चाहते थे

"पानी चारों ओर जैसे फैलता है वैसे यह फैलना चाहिए। हमारी शक्ति व्यापक बननी चाहिए। बापू की इच्छा एक संप्रदाय बनाने की नहीं थी। उनकी हमेशा व्यापक दृष्टि रहती थी। यदि वह चाहते तो बड़ी आसानी से जैसे ब्रह्मसमाज है, आर्यसमाज है, इस तरह एक समाज, सम्प्रदाय या संघ चला सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, न वह ऐसा करना चाहते थे। मुझे याद है, १९१६ में कोचरब में बापू ने कहा था—मैं उस समय वहीं था, साबरमती तब नहीं गये थे, पच्चीस-छब्बीस व्यक्ति उस आश्रम में थे—कि अब सबको बिखर जाना है। यदि आश्रम चलाने की ताकत है तो उसे बन्द करने की ताकत भी हममें होनी चाहिए।

"अभी तो मैंने देखा है कि जितनी संस्थाएं हैं सब अपने में

सीमित हैं, या एक-डेढ़ वर्ष ट्रेनिंग लेते हैं और चले जाते हैं। ऐसी संस्थाएं मैं पसन्द नहीं करता ।"

विरोध हो, उपहास नहीं

कुछ देर मौन रहकर भी बाबा फिर बोले, "संघटन की तो बात जाने दें, विघटन ही के प्रयत्न में मानो हम लगे हैं। अभी मैं मध्यप्रदेश-असेम्बली की रिपोर्ट पढ़ रहा था। उसकी प्रश्नोत्तरी इतनी दूषित है कि वहां जो सवाल-जवाब होते हैं, उसमें विघटन ही होता है। एक-दूसरे के जो जवाब देने का तरीका होता है, उस से मन-मुटाव बढ़ता है। संस्कृत में एक कहावत है, जिसका अर्थ है —उपहास करके हृदयविच्छेद करने की अपेक्षा शिरच्छेद करना अच्छा है । कत्ल नहीं करते हैं, पर हृदय का खून होता है यहां, जिससे मित्र बनने की बात तो दूर रही, हम शत्रु पैदा कर लेते हैं। इसकी अपेक्षा विरोध करें तो अच्छा, पर भरी सभा में उपहास करके जिन्दगी-भर उसका सहयोग हम प्राप्त नहीं कर सकते ।"

बाबा निवास पर पहुंचते-पहुंचते कहने लगे, "अब १२ ता. को तो निकलने की सोच ही रहा हूं। १२ को 'चांदील-अध्यायो समाप्तः" । जब बीमार पड़ा था तो जाने को भी कहते तो मैं डटा रहता। अब 'रहो' कहेंगे, तो भी डटना नहीं है। १२ ता. को पद-यात्रा करने का निश्चय अब दृढ़ होता जाता है ।"

निवास की सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते सामने ही चांदील के थाने को देखकर बाबा ने विनोद किया, "चांदील के थानेदार होकर बैठे हैं हम यहां ।"

आज साठ मिनिट में ठीक दो मील डेढ़ फर्लांग चले।

आखिरी दिनों में सद्बुद्धि आये तो भी ठीक

दोपहर को बाबा अपने ही बरामदे में चक्कर लगा रहे थे।

त्री लक्ष्मीनारायण भारतीय उनके साथ थे। भूदान के काम आदि के बारे में ही चर्चा चल रही थी। बाबा ने कहा, "शंकराचार्य जैसे संन्यासियों को तैयार करते थे और कहते थे कि थोड़े-से लोग यदि ब्रह्मचर्य से सीधे संन्यास ले लेंगे तो कुछ बिगड़नेवाला नहीं है। इसी तरह कुछ लोग सब छोड़कर इस काम में अगर लग जायं तो दुनिया को कितना फायदा हो जाय !"

लक्ष्मीनारायण ने कहा, "कई जगह तो माताएं अपने बच्चों को कहती हैं कि दे न बेटा, पर बच्चे मना करते हैं—अपने शिक्षण की, इसकी-उसकी कई समस्याएं खड़ी करते हैं।" तब बाबा ने कहा, "हां, यदि आखिर में भी रामनाम लिया तो, कहते हैं, तर जाते हैं, इसलिए आखिरी दिनों में भी सुबुद्धि आजाय तो जन्म सफल हो जायगा।"

संध्या से पूर्व गोपबाबू से काफी समय तक बातें हुईं। उन्होंने अपने एक वर्ष के अनुभव बाबा के सामने रक्खे और अपना समाधान भी किया।

अपनी सायंकालीन प्रार्थना में भी विनोबा ने सुबह-वाली चर्चा के सूत्र हाथ में लेते हुए स्थानीय प्रेरणा तथा जन-शक्ति पर बल दिया—

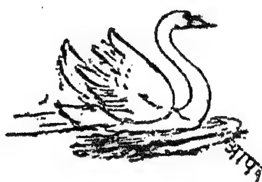
आत्म-निर्भर बनें

"अभी कुछ ज्यादा कहना नहीं था, पर आज सुबह एक चर्चा चली, उसका थोड़ा जिक्र करना चाहता हूं। वैद्यनाथबाबू ने आज मुझे कहा कि यहां के लोग काम कर सकते हैं, अगर हम उसके लिए कोई योजना करें, जैसे कि आदिवासी सेवा-मंडल है, और ऐसी दूसरी संस्थाएं हैं, उनके जरिये हम काम खड़ा करें तो यहां कुछ काम हो सकता है। मैंने कहा कि मैं ऐसा नहीं चाहता,

बल्कि यहीं के लोग काम खड़ा करें तो उसके लिए बाहर की थोड़ी मदद दी जा सकती है। लेकिन योजना यहां की होनी चाहिए, यहीं की बुद्धि, यहीं की जन-शक्ति और यहीं की संपत्ति उसमें लगनी चाहिए। मूल स्रोत अन्दर से जब बहता हुआ रहता है तो दूसरे बाहर के प्रवाह आकर उसमें मिल सकते हैं। मूल स्रोत वहां न हो और एक कृत्रिम योजना हम करें तो वह योजना मुझे लाभदायी मालूम नहीं होती और न वह मेरी वृत्ति के अनुकूल है। कम-से-कम दो-चार भाई तो तैयार हों, संपत्तिदान के लिए, जीवन का व्रत लेने के लिए जो व्रत मैंने सुझाये हैं, तो उनके आधार से कुछ काम खड़ा हो सकता है।

"मैं देखता हूं कि यहां कुछ हवा है, कुछ स्थान भी है और व्यापारी लोग भी हैं। अगर वे सोचें तो काम हो सकता है। तो मुझे यह लगा कि विचार स्पष्ट कर दूं ताकि यहां के लोग भ्रम में न रहें कि हम ही कोई जरिया या एजेन्सी खड़ी कर दें और काम चले और यहां के लोगों की सहानुभूति ही उसमें रहे। काम तो आत्म-निर्भरता से होना चाहिए। अपना उद्धार अपने से ही हो सकता है। दूसरों से तो कुछ विचार मिल सकते हैं, उनसे मार्ग-दर्शन मिलने में सहायता मिल सकती है।"

मंगलवार; ३ मार्च '५३



: २५ :

लोगों का आना शुरू

६ बजने में २५ मिनिट पर बाबा घूमने निकले। आज काफी समय मौन में ही बीता। लौटते समय सामने से वैद्यनाथबाबू को आते हुए देखकर बाबा ने कहा, "आज आपको थोड़ा आगे बढ़ना पड़ा।" क्षण-भर चुप रहकर फिर बोले, "यही देखिये न, गोप-बाबू कह रहे थे कि उड़ीसा में एक लाख एकड़ होना सम्भव नहीं हैं। मैंने कहा एक लाख में मुझे क्या बुलाते हो। उन्होंने कोशिश की और अब तो अकेले कटक में, एक जिले में ही, एक लाख एकड़ जमीन मिल गई। तो जैसे हम आगे बढ़ते हैं, सबको भी आगे बढ़ना पड़ता है।"

पुनः सब मौन थे। एक स्थान पर पलाश का फूल से सजा और भरा वृक्ष मैंने बाबा को दिखाया। बाबा ने देखते ही महाभारत का एक श्लोक सुनाकर कहा, "मैंने बचपन में यह पढ़ा था। इसका अर्थ है—अर्जुन घायल होकर पड़े थे, उनका देह घावों से भरा था और उसमें से रक्त निकल रहा था। तो उस समय का वर्णन किया है कि उनका देह ऐसा लगता था मानो 'पलाशद्रुम' हो। हम तो थोड़ा-सा घाव होता है तो 'अरे बाप रे' कहते हैं। अर्जुन का तो शरीर ही पलाशद्रुम बन गया था। इसका खयाल रक्खो!"

बाबा रास्ते में ही ७ बजे शहद का पानी पीते हैं। ७ बजे के करीब हम निवास से आधा मील ही दूर थे, अतः वहां पहुंचकर ही पीने का तय किया।

घूमने के बारे में बात चली तो कहने लगे कि यदि हरेक

आदमी बीस मील चलने की तैयारी रक्खे तो मोटर को पीछे छोड़ दे सकते हैं।

आज सरोज और उसके पति श्री राजेनभाई आये। सरोज बाबा के सचिव श्री दामोदरभाई की भानजी है। सरोज ने जब बाबा को प्रणाम किया तो उसकी दुबली-पतली देह को देखकर तुरन्त बाबा ने बड़े स्नेह से कहा, "क्यों कुछ जान बाकी है क्या?" रास्ते में ही बाबा मिले थे। अतः अन्य कुछ बातें नहीं हुईं। इतने बड़े परिवार में बाबा जब इस तरह अपने स्नेही परिजनों को देखते हैं तो उनके ममतामय हृदय के भाव वाणी में भी फूट पड़ते हैं। फकीर संत होते हुए भी अनेकों के प्रति उनका स्नेह-स्रोत मानों अविरल गति से बहता रहता है और उसमें वैराग्य की शुष्कता नहीं, स्नेह की तरलता सदा उनके और दूसरों के जीवन को स्निग्ध बनाये रखती है।

आज ही श्रीमन्जी के साथ भेजा हुआ मदालसा दीदी का पत्र आया। इनके[1] आने के समाचार दिये थे और बाबा को लिखा था, "बुद्धि-ज्ञान का संगम गुरु-चरणों में ५ तारीख को होगा।" बाबा इनके आने की खबर से खुश हुए और कहने लगे, "काफी समय से उसे देखा नहीं; अच्छा है वह आ रहा है।"

इनके प्रति बाबा का स्नेह-भाव देखकर मैं गद्‌गद हो जाती हूं। बाबा के पास रहकर मैं स्नेह और ज्ञान दोनों की ही अमर संपत्ति पा रही हूं, पर उनकी सेवा करने में अपनेको कितना अयोग्य-सा पाती हूं। बाबा के निकट रहकर मैं मानो अपने को भूली हुई रहती हूं और उनके चरणों में बैठी मैं स्नेहामृत का निरन्तर पान करती हूं। सचमुच मेरा अहोभाग्य है कि मुझे ऐसा अलौकिक प्यार

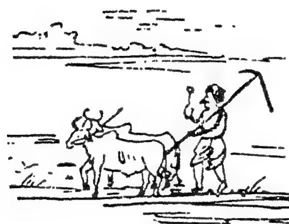
---

[1] श्री बुद्धसेन दरबार

मिला है, मिल रहा है और यही मेरे जीवन का अमर संबल नित-नूतन प्रेरणा और जीवन की अमर संपत्ति है, जिसे मैं बड़ी साध, बड़े चाव और बड़े यत्न से सदा संजोये रखूंगी।

सर्वोदय-सम्मेलन के लिए अब लोगों का आना शुरू हो गया है। सब पुराने साथी और परिचित व्यक्ति मिल रहे हैं और चारों ओर चहल-पहल आरम्भ हो गई है। नया जीवन ही मानो इस नन्हे-से ग्राम में आ रहा है।

बुधवार; ४ मार्च '५३



: २६ :

कांग्रेसी नेताओं की चर्चा

प्रातः ६-५५ पर बाबा घूमने निकले। रास्ते में एक-दो भाइयों को समय दिया था, उनसे भूदान तथा संपत्ति-दान के बारे में बातें कीं।

सार्वजनिक काम और कांग्रेसी नेता

एक भाई के साथ भूदान-यज्ञ के कार्य व कांग्रेसी नेताओं की बातों के सिलसिले में बाबा ने उन्हें कहा, "कांग्रेस आज राज्यकर्त्ता है और इसलिए कांग्रेस-नेता राज्य-करण में लगे हैं। उन्हें अब इस तरह के सार्वजनिक कार्यों के लिए हम रास्ता दिखा रहे हैं। हमने उन्हें यह नया मार्ग दिखाया है और इसके लिए प्रेरणा भी दी। अब वे सहयोग दे रहे हैं। हमें उनसे शिकायत क्यों होनी चाहिए ?"

आत्म-परीक्षण करें

पुनः कांग्रेसी नेताओं के ऐशो-आराम और बड़े-बड़े पदों को पाकर जीवन-मान ऊंचा होने तथा बड़ी-बड़ी तनख्वाहों को बताकर आलोचना करते हुए उनके प्रति एक भाई ने अपना असंतोष-व्यक्त किया। बाबा को उनकी आलोचना कुछ पसन्द नहीं आई और वह बोले, "आज भी मैं कह सकता हूं कि कितने ही मंत्री ऐसे हैं, जो मिनिस्टर होते हुए भी इतने सादे हैं, उनका जीवन इतना सच्चा है कि हमें ऐसी आलोचना शोभा नहीं देती। फिर उन्होंने जवाहरलालजी और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का उदाहरण देते हुए कहा कि प्रधानमंत्री होने पर भी उनके जीवन में कोई अन्तर नहीं आया है और हो सकता है वह प्रधानमंत्री न होने पर

इससे भी अधिक शान-शौकत से अपना जीवन बिता सकते। बचपन में उनका जीवन राजकुमारों-जैसा ही रहा है और आज वह प्रधानमंत्री होते हुए भी इतने सादे हैं। इसी तरह मुंशीजी को आज तीन हजार रुपये वेतन मिलता है और मुझे मालूम है कि तीन हजार तो उनका भोजन-रसोई में ही खर्च हो जाता है, बाकी वह अपनी पहली पूंजी में से खर्च करते हैं। तो गवर्नर बनने पर भी उन्हें कुछ अधिक मिल रहा हो सो बात नहीं है। फिर भी जनता शिकायत करती है कि मंत्रियों और गवर्नरों की इतनी बड़ी-बड़ी तनख्वाहें हैं। हां, देश में दो-सौ या तीन-सौ रुपये लेने-वाले व्यक्ति मिल सकते हैं, जो मंत्री या गवर्नर बनकर इतने वेतन से संतुष्ट रहें, पर फिर उन्हें जवाहरलाल या मुंशी नहीं मिलेंगे। उनके त्याग और उनकी सादगी की ओर न देखकर बाज़े लोग टीका-टिप्पणी करने लग जाते हैं, लेकिन बारीकी से आत्म-परीक्षण नहीं करते। हम दूसरों के गुण-दोषों को न देखकर अपने गुण-दोषों का ही परीक्षण करेंगे तो उससे देश को ज्यादा लाभ होगा।"

आंध्र राज्य का जिक्र आने पर श्री टी० प्रकाशम् का नाम आया। बाबा ने फौरन उनकी प्रशंसा की और कहा, "टी० वीर पुरुष हैं।" फिर हँसते हुए बातों-ही-बातों में कहने लगे, "संन्यासी नहीं, कर्मयोगी हैं। बड़ी उम्र में हम भी तो देखो कर्म में ही लगे हैं।" इस तरह बातें करते हुए डेरे पर आ गये।

श्री जयप्रकाश नारायण तथा अन्य अनेक रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं की मंडली भी आ गई थी। लोगों का आना जारी था।

गुरुवार; ५ मार्च '५३

: २७ :

स्टालिन की मृत्यु का समाचार

ग्राम-सफाई का संदेश

आज प्रार्थना में संख्या खूब थी। सर्वोदय-सम्मेलन के सभी मित्र सम्मिलित हो गये थे। आज सुबह प्रार्थना में सम्मेलन के लिए आये हुए सब कार्यकर्त्ताओं को संबोधित करते हुए बाबा ने कहा, "आज का दिन खाली है, यह मानने का कोई कारण नहीं है। हम चांदील गांव में आये हैं, तो उसकी सेवा करने का हमें मौका मिला है। मेरा सुझाव है कि जो भाई अन्य कार्यों में न हों वे सब मिलकर इस गांव को साफ कर डालें। इससे सफाई होगी; इतना ही नहीं, गांववालों को एक तालीम भी मिलेगी। तो यह मेरा एक सुझाव है।" इस प्रकार आजका सबसे पहला सन्देश बाबा ने 'ग्राम-सफाई' का दिया, जो रचनात्मक तथा ग्राम-सेवा का एक अंग है।

घूमने जाते समय पता ही न चला कि बाबा कब निकल गये। देखा तो वह बहुत आगे जा चुके थे। मैं और चेरियन काफी तेजी से बहुत दूर तक गये, पर आखिर तक उन्हें जाते हुए न पकड़ पाये। लौटने की जगह पर पहुंचकर ही बाबा को पकड़ा। बाबा ने हँसकर पूछा, "क्यों आज देर हो गई? आज कैसे चूक गई?" मैंने कहा, "आप तो बताते ही नहीं और चुपके से चल देते हैं। जरा भी ध्यान चूका तो आपको पकड़ना मुश्किल हो जाता है।"

श्रद्धा-भक्ति

लौटते समय बाबा श्रद्धा और भक्ति के विषय में कुछ सुना

रहे थे और कह रहे थे, "भक्ति हृदय की होती है, शक्ति बाहर की। श्रद्धा अन्दर से होती है, सेवा बाहर से।" इस छोटे-से सूत्र में बाबा ने कितनी अनमोल सीख दी है। भक्ति से ही शक्ति मिलती है और श्रद्धा से ही सेवा की प्रेरणा। हृदय में भक्ति होगी तो कार्य की शक्ति स्वयं बढ़ जायगी। हृदय के अन्दर श्रद्धा होगी तो सेवा-कार्य खूब होगा। भूदान के कार्य के लिए बाबा इसलिए हमेशा ऐसी ही भक्ति और श्रद्धा रखकर काम में जुट जाने को सदा प्रेरित करते हैं।

आज संध्या को प्रार्थना के लिए जाते समय मार्शल स्टालिन की मृत्यु का समाचार बाबा को मिला। विनोबा एकाएक चुप हो गये। महान् देश रूस के सबसे बड़े नेता का निधन हुआ। हम लोग तो स्तब्ध-से रह गये। जब प्रार्थना हो चुकी तो बाबा ने अपने प्रवचन में उस महापुरुष के स्मरण में श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए कहा—

स्टालिन की मृत्यु

"आज मार्शल स्टालिन की मृत्यु की खबर आई है। जिन्होंने अपने जीवन में एक संकल्प किया और जीवन-भर उसके लिए परिश्रम किया, ऐसे लोगों में मार्शल स्टालिन की गिनती है। दूसरे लोगों पर उनकी सत्ता चली, वैसे महान् गुण उनमें थे। ऐसे पुरुष की मृत्यु के बाद उसके गुणों का सदा स्मरण रहेगा। दोषों को दुनिया भूल जायगी। दोष देहजन्य होते हैं, गुण आत्मा से आते हैं। इसलिए गुण चिरंजीव हैं और दोष अल्पायु होते हैं। मार्क्स, लेनिन और स्टालिन का नाम साम्यवाद के इतिहास में एक के बाद एक आता है। बहुत-से लोग देखते हैं, देख चुके हैं कि इन तीनों में विचार उत्तरोत्तर बदलते गये हैं; फिर भी शायद विचार बदल रहा है, ऐसी अनुभूति न लेनिन को कभी हुई, न

स्टालिन को हुई होगी; बल्कि वे यही मानते रहे होंगे कि मार्क्स ने जिन विचारों का प्रवर्तन किया, उनको आकार देने की कोशिश उन्होंने की। जहांतक लेनिन का सवाल था वह मार्क्स के नजदीक भी थे और इसलिए विचारों का परिवर्तन या बदल बहुत दूर तक नहीं गया। पर सैनिक स्टालिन के बारे में मैं यह नहीं कह सकता। बल्कि यही कहना पड़ता है कि विचार कहीं-का-कहीं चला गया। मगर उसकी चर्चा करने का यह मौका नहीं है। वह चर्चा तो इतिहास में होगी। महायुद्ध में रूस का बचाव स्टालिन की राजनीति, धृति और उत्साह से हुआ, यह मानना पड़ेगा और इसलिए रूस के लोग उसके नाम को नहीं भूलेंगे। उसके लिए उनके मन में निरंतर कृतज्ञता रहेगी।

हिंदुस्तान के लिए सबक

"विचार में ज़रा विकृति आ गई, तो उसकी पहचान भी फिर नष्ट होती है। पर विचार उत्तरोत्तर हिंसा के आश्रय से विकृत होता जाता है और आखिर परिणाम अपेक्षा से बिल्कुल उल्टा हो सकता है। यह सब हमारे सीखने की बात है और हिन्दुस्तान के लोगों के लिए इसमें से बहुत सबक मिल सकता है। हिन्दुस्तान एक बड़ा देश है। उसकी अपनी एक परंपरा भी है। हिन्दुस्तान में अगर सही विचार चले तो दुनिया पर भी उसका असर हो सकता है और हिन्दुस्तान में अगर गलत विचार चले तो दुनिया के दुःख में बहुत वृद्धि हो सकती है। इसलिए हमारे सामने चुनाव करने को है कि हमारी और दुनिया की परिस्थिति को देखकर हमको तटस्थ बुद्धि से सोचना चाहिए और सबको सिखाना चाहिए।

"आज स्टालिन की मृत्यु के दिन हम उनके गुणों का स्मरण

करें। रूस के लोग आज दुःख से विह्वल होंगे। उनके दुःख का स्पर्श हमको भी हुआ है, तो सारी दुनिया ने और हमने भी रूस के साथ कुछ खोया, इसमें शक नहीं।"

शुक्रवार; ६ मार्च '५३



: २८ :

सर्वोदय-सम्मेलन की परिक्रमा

सर्वोदय-सम्मेलन का प्रारंभ

आज सर्वोदय-सम्मेलन का पुण्य दिन था। चारों ओर नया हर्ष, नया उल्लास और नया जीवन छाया हुआ था। ८ बजे से सम्मेलन आरम्भ होनेवाला था जिसमें राष्ट्रपति भी पहुंचनेवाले थे। सम्मेलन के कारण बाबा को आज अपने घूमने का समय कम करना पड़ा। वे थोड़ी दूर ही घूमे।

घूमने जाते हुए सबसे पहले सीढ़ियां उतरते-उतरते ही बाबा ने आज मुझसे पूछा, "क्यों, दरबार आ तो गया है न ?" बाबा को मालूम था कि यह ता० ५ को आनेवाले हैं, अतः वह मुझसे पूछे बिना न रह सके। वह इनके स्वभाव से भी खूब परिचित थे, अतः आने के विषय में पूछने के साथ ही यह भी बोले, "काम में होगा।" मैंने सकुचाते हुए कहा, "जी हां, आ तो गये हैं, पर कहते थे कि शांति से मिलेंगे। यह भी वह कह रहे थे कि विनोबा मेरे स्वभाव को जानते हैं।" बाबा ने हँसकर कहा, "हां, मैं जानता हूं।" मैंने फिर कहा कि मैंने तो उन्हें एक-दो बार कहा, आपके पास कम-से-कम एक बार आ जाने को, पर आप मुझसे भी अधिक उनके स्वभाव को जानते हैं और फिर आपने ही तो इन्हें ऐसा बनाया है। बाबा मेरी ओर मुस्कराकर रह गये। मैं भी फिर कुछ न बोली। मालूम नहीं, बाबा मेरी शिकायत पर मुस्कराये या इनके काम में मग्न होनेवाले स्वभाव पर।

भूदान-कार्य पर चर्चा

रास्ते में चार-पांच भाइयों से भूदान आदि के काम के संबंध में बातें कीं। एक भाई ने बाबा के साथ रहने की इजाज़त मांगी तो बाबा ने कहा, "मैं अपने साथ यदि हरेक को रखने लगूं तब तो मुश्किल हो जाय और गांववालों पर भी बोझा हो।" फिर कहने लगे, "यह भी अपना-अपना नसीब है। सत्संग भी नसीब से होता है; सबको ही सत्संग मिलता है सो बात नहीं।"

भूदान-यज्ञ के साधनों के लिए बाबा बता रहे थे, "जैसे ज्योति जलाते हैं तो उसके लिए स्नेह-बाती सबकी जरूरत पड़ती है, इसी तरह इस दीपक को जलाने के लिए भी ऊपरी सब साधन चाहिए।"

एक भाई को भूदान-समिति की इस टीका के उत्तर में कि समिति में सब एक होकर काम नहीं करते, बाबा ने कहा, "जो दो से मिलकर काम नहीं कर सकता वह और कोई काम नहीं कर सकता, न जीवन में सफल हो सकता है। संगठन में ही सफलता है। संगठन जीवन की एक बड़ी शक्ति है।"

ठीक ८ बजे सर्वोदय-सम्मेलन आरम्भ हुआ। आओ, इस सम्मेलन पर भी एक विहंगम दृष्टि डाल लें, जिसके कारण चांदील ग्राम जग-मग है और जिसके कारण उसने बड़ा पुण्य पाया है।

चांदील धन्य है !

सचमुच चांदील ग्राम भाग्यवान है। उसका भाग्य जागा था। विनोबा की कल्पना को यदि सत्य मानें तो शांडिल्य ऋषि का पुण्य प्रकट हुआ था[1] या इस महान् संत के तप का फल मिल रहा था चांदील को, जो इस छोटे-से पथरीले ग्राम में सर्वोदय-सम्मेलन का आयोजन हुआ। सर्वोदय-सम्मेलन ने एक नया जीवन दे दिया।

---

[1]प्राचीन काल में चांदील शाण्डिल्य ऋषि की तपोभूमि रही है।

दीर्घकाल से सोया हुआ चांदील मानो जाग उठा था, सर्वोदय की नवरश्मियों की नई ऊष्मा पाकर। नीरव वीथियां जनरव से मुखरित हो उठी थीं और चारों ओर फैली हुई गिरिशिखाएँ मानो गौरव से सिर ऊंचा किये खड़ी थीं। अपने इस अहोभाग्य पर उन्हें क्यों अभिमान न हो! सेवापुरी से चली सर्वोदय-गंगा की धारा इस ओर जो बह निकली थी। पुण्य पावनमयी इस गंगा के स्पर्श से वे भी पुण्यमयी बन गई थीं।

भोले ग्रामीणजनों ने कुछ दिन पूर्व ही 'भारत के राजा'[1] के दर्शन किये थे। हर्ष से फूले न समाते थे तब वे। इस संत-बाबा के पुण्य प्रताप से ग्रामीण जनता को भी अपने देश की महान् आत्माओं का दर्शन और सत्संग मिला था। सम्मेलन में सभी दिशाओं से जनगण आने लगे। जयप्रकाशजी आ पहुंचे, प्रभावती बहन के साथ। आशादी और रमादेवी आईं। गोपबाबू (उड़ीसा के गांधी) और शंकरराव देव आये। धीरेनभाई और दादा धर्माधिकारी भी पहुंचे। काकासाहब तथा कुमारप्पाजी भी पहुंच गये। बिहार के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में श्री लक्ष्मीबाबू, ध्वजाबाबू और वैद्यनाथबाबू तो पहले से ही आकर डटे थे। सम्मेलन की जिम्मेवारी और तैयारी का भार उन्हींपर तो था। अपने साथियों सहित अनेक संस्थाओं के प्रमुख कार्यकर्त्ता भी आये थे। किसी-किसीके साथ अपनी छोटी-सी सेना भी थी। सबके बीच सेवाग्राम और महिलाश्रम, वर्धा की मंडली विशेष आकर्षक थी। और तुकड़ोजी महाराज की उपस्थिति प्यारी ही थी। जन-समूह तो चला ही आ रहा था। बसें भर-भरकर आती थीं, स्पेशल ट्रेनें दौड़ रही थीं और मोटरकारों का आवागमन जारी था ही।

---

[1]श्री जवाहरलाल नेहरू।

एक छोटे-से गांव में इतनी मानव-मेदिनी कैसे समायेगी, यह प्रश्न सभीके मन में था, किन्तु जहां यह तपस्वी संत बैठा है, वहां इतनी चिंता और दुविधा क्यों ? जिसका पुण्य प्रताप सबको यहां खींच लाया, उसीके कृपा-पुण्य से सबका आयोजन भी सुचारु रूप से हो ही जायगा, यही विश्वास सबके मन में था।

सम्मेलन के कुछ दिन पहले की बात है। विनोबा देखने निकले थे कि सम्मेलन की तैयारियां कहांतक हुई हैं। साफ मैदान को देखकर लक्ष्मीबाबू से विनोद में कहा था "यहां बक्सर की लड़ाई-वाला मामला न हो।" उनके इस कथन में, अभी तो कुछ भी तैयारियां नहीं हुईं, इसको व्यक्त करने के साथ शीघ्रता करने का संकेत था। एक दिन प्रार्थना के बाद अनुग्रहबाबू[1] से सम्मेलन की तैयारी को लक्ष्य करके वह बोले, "अब कुछ तैयारियां हो रही हैं; चार दिन पहले पानी नहीं दीखता था, अब पानी तो दिखाई देता है।" अनुग्रहबाबू हँसकर कहने लगे, "हमारा सब काम आखिर-आखिर में ही होता है। यहां तो आप बैठे हुए ही हैं। सब कुछ हो ही जायेगा।" रामविलास शर्मा कह रहे थे, "सेवापुरी में आपके आगमन से पूर्व खूब आंधी-पानी आया और जो कुछ बना रक्खा था सब उड़ गया। आपके पहुंचते ही सब शांत हो गया और काम भी सब अच्छी तरह पूरा हुआ, सम्मेलन सफल हुआ, पर आपके वहां से प्रस्थान करते ही फिर सब टूट गया।" सब हँस रहे थे कि एक भाई ने कहा "लेकिन यहां का काम तो मुस्तकिल करके जायंगे।"

सर्वोदय की स्मृति में यहां पानी का एक पक्का बांध बांधा है।

---

[1] बिहार के तत्कालीन अर्थ-मंत्री।

पहाड़ी जुड़िया की एक नन्ही-सी धारा को बांधने पर भी उसमें आठ-दस फुट पानी जमा हो गया है और सच ही यह बांध इस मरुभूमि में सबके लिए अति सुखदायी और फलदायी रहेगा और सर्वोदय की स्मृति को सदा ताजा रक्खेगा। उसी दिन अनुग्रहबाबू पानी की व्यवस्था देख गये और वहां से जाकर पाइप आदि की भी व्यवस्था कर दी, जिससे पानी की रही-सही कसर भी पूरी हो गयी और एक बड़ी समस्या मानो हल हुई।

अनुग्रहबाबू के कथनानुसार, या कहें बिहार की पुरानी प्रथा के अनुसार, आखिर-आखिर में सम्मेलन की तैयारियां पुरजोर से हुईं और सम्मेलन के पहले दिन हमने देखा कि सब व्यवस्था वास्तव में पूर्ण थी।

विहंगम दृष्टिपात

इस सम्मेलन में सम्मिलित होने से पूर्व, आइये, इस स्थान की एक परिक्रमा कर लें। शहर के बीच बने हुए 'नेता-निवास' के आगे से होकर हमें गुजरना है। गांव के कुछ धनी-मानी सज्जनों ने अपने मकान खाली कर दिये हैं और अपने इन अतिथियों का स्नेह-समादरसहित स्वागत करने में लग गये हैं, अपने कष्टों की परवाह किये बिना। ऐसे अतिथि भला कब उन्हें मिलेंगे और ऐसा सेवाभाव भी कहां नसीब होगा! चलो, यहां तो यजमान और जजमान को छोड़कर हम आगे बढ़ें। बाजार की मुख्य सड़क से जाना है हमें। जहां अंधेरा था वहां अब पैट्रोमेक्स का तेज प्रकाश आंखों को चकाचौंध कर रहा है। होटलों और दुकानों से मिष्टान्नों की जो सुगन्धि आ रही है वह यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित करती है; पर हमें तो यहां नहीं ठहरना, आगे जाना है सीधे। यह चांदील का

थाना है, ठीक इसके सामने है 'विनोबा-निवास ।' यहां विनोबा बैठे हैं, उनके ही शब्दों में 'थाने के थानेदार बनकर' और उनके साथ हैं उनके अनुगामी सिपाही। बड़ा जबरदस्त रोब है इस थानेदार का। चलिये, चुपचाप यहां से भी दौड़ चलें। पर उसके पास ही इस बड़े से मकान में इतनी धूमधाम और चहल-पहल कैसी! अरे, यह धर्मशाला है। सर्वोदय के सेवकों को सेवा-धर्म करने दीजिये यहां, उनकी दौड़-धूप में फिर हिस्सा लेंगे।

भूदान की संक्षिप्त कहानी

अब हम आये हैं सम्मेलन के प्रवेश-द्वार पर, जिससे पता चलता है कि यह सर्वोदय का पांचवां सम्मेलन है। मालूम है, चार सम्मेलन कहां-कहां हुए? पहला सर्वोदय-सम्मेलन १९४९ में बापू के सेवाग्राम में संपन्न हुआ। दूसरा सम्मेलन हुआ उड़ीसा के अंगुल नगर में और तीसरा सम्मेलन था हैदराबाद के शिवरामपल्ली ग्राम में। इसी सम्मेलन के लिए बाबा की पदयात्रा का आरंभ हुआ। दिल के भीतर छिपे एक संकल्प को लिये बाबा मानो निकल पड़े। मन में न कोई कल्पना थी, न योजना; किन्तु इसी सर्वोदय-सम्मेलन ने बाबा को तैलंगाना-यात्रा की प्रेरणा दी और इस प्रेरणामय संकल्प से भूदान की गंगोत्री का उद्गम हुआ। क्रान्ति-कारी यज्ञ का अनुष्ठान हुआ। अनेकों ने इस यज्ञमें श्रद्धापूर्वक हविर्भाग अर्पित किया। भूदान के इन दाताओं में भगवान के दर्शन होते थे। अद्भुत प्रेरणा लेकर बाबा पुनः परमधाम, पवनार पहुंचे और साम्ययोग में लग गये। पर फिर उन्हें पं० जवाहरलालजी के निमंत्रण पर अपनी यात्रा करनी पड़ी। अब उनकी पदयात्रा भूदान-यात्रा बन गई। दिल्ली आते-आते जमाने की पुकार उन्होंने सुनी। दिल्ली पहुंचकर उनका भू-दान का संकल्प दृढ़ हुआ और

उत्तरप्रदेश की यात्रा के लिए चल पड़े। सेवापुरी में सर्वोदय का चौथा सम्मेलन हुआ, जिसमें २५ लाख एकड़ जमीन प्राप्त करने का नया संकल्प हुआ और उत्तरप्रदेश की यात्रा पूर्ण कर बिहार में पदार्पण किया। गया में पग रखते ही भगवान बुद्ध का नाम लेकर चार लाख एकड़ भूमि का संकल्प करके आगे बढ़े। चलते-चलते चांदील पहुंचे, हृदय में क्रांति की इस अग्नि को लिये और देह में बुखार की ज्वाला को लिये। आत्मा और परमात्मा का मानो संघर्ष चला। आतमा की विजय हुई या कहें कि परमात्मा ने इस महात्मा को इहलोक की इस संघर्ष-भूमि में क्रांतिदूत बनकर काम करने का अवसर दिया। आत्म-परीक्षण करते-करते बाबा ने एक और संकल्प कर लिया "बिहार की भूमि-समस्या पूरी तरह से हल करने का"।

किन्तु यह क्या! प्रवेश-द्वार पर खड़े-खड़े हम तो सम्मेलनों के पूर्व-इतिहास और बाबा के संकल्प-विकल्पों की कहानी सुनने में लग गये। यह सब तो अभी हमें सुनना ही है, विस्तार से इस सम्मेलन में। इस तरह रुक-रुककर चलेंगे तो परिक्रमा करते-करते बड़ी देर लग जायगी। अच्छा चलिये, आगे बढ़ें। दूर तक और चारों ओर एक दृष्टि घुमायें तो सम्मेलन के स्थान का पूर्व-भाग हम देख सकेंगे। घासफूंस का, किन्तु सुन्दर और विशाल पंडाल है। ग्रामीण कला और ग्रामशोभा आभासित हो रही है उसमें। दाहिनी ओर है डाकखाना। छोटे-से इस कस्बे में अब तार-टेलीफोन सभी कुछ लग गया है। इसीके आगे दो कदम पर हैं विभिन्न दफ्तर। सर्वसेवा-संघ का ऑफिस है, जहां सम्मेलन के कार्यक्रम की संपूर्ण जानकारी मिल सकती है। भोजन करना हो तो टिकट भी यहीं खरीदने होंगे, नाश्ता, दोपहर और शाम के भोजन के लिए। अच्छा

चलिये, टिकट लेने की बात फिर सोचेंगे। पास ही है पूछताछ-ऑफिस। अभी तो हमें कुछ पूछना नहीं है। अब हम असली स्थान पर आ गये। यह है पंडाल। आज ही तो यह पूरा बनकर तैयार हुआ है। चालीस-पचास हजार के करीब लोग इसमें बैठ सकें, इतना विशाल है यह। टाट का ही बिछावन है और टाट का ही छप्पर। न कहीं विशेष सजावट है, न पुष्प-मालादि का श्रृंगार। आभूषणविहीन ग्रामश्री-सी इसकी शोभा फिर भी मनोहारी और आकर्षक है। चारों ओर का प्राकृतिक सौंदर्य इसकी सुन्दरता में वृद्धि करता है। दर्शकों के हृदय और कानों को तो संत विनोबा की वाणी ही तृप्त कर देगी, नेत्रों के लिए यह दृश्य सुखकारी है। तपती दोपहरी में इस छप्पर की छाया और दूर से पर्वतमाला से टकराकर आते हुए वायु के झकोरे देह और मन के ताप को हरते हैं। क्षणभर यहां बैठने को जी चाहता है, किन्तु परिक्रमा में इस तरह बीच में बैठना ठीक नहीं। पंडाल के पास ही पानी की प्याऊ है। गीताप्रेस, गोरखपुर का बोर्ड ऊपर लगा है। प्यासों को पानी देकर पुण्य-भागी बनने का यह अच्छा अवसर पाया है इन्होंने भी। चलो, पानी तो पी ही लें। पानी तो पी लिया, अब आगे बढ़िये।

सेवक-निवास

यहां तो झोंपड़ियों की लाइन लगी है। स्थान-स्थान पर विभिन्न प्रान्तों के नामों की तख्तियां लगी हैं। उत्तरप्रदेश, मध्य-प्रदेश, बिहार, आसाम, बंगाल, मद्रास, उड़ीसा, तामिलनाड़, हैदराबाद, राजस्थान, मध्य भारत, सभी नाम तो मिल जायेंगे इन पंक्तियों में। इन्हीं तख्तियों के पास छोटे-छोटे लैटरबक्स लगा दिये हैं, ताकि डाक-वितरण में कठिनाई न हो। सादा पर सुव्यवस्थित हैं ये 'सेवक-निवास'। सर्वोदय-समाज के सेवकों के अनुरूप ही हैं

मानो। दरिद्रनारायण की कुटिया पर आये हैं सब। यहां तो ये फूंस की झोंपड़ियां ही मिल सकती हैं। स्नेह का सरल अतिथि-भाव पाकर ही तृप्त होता है। यहां किसीकी किसीसे कोई शिकायत हो भी कैसे सकती है! सेवक बनकर आये हैं; सेवा लेने नहीं, सेवा करने। इसलिए सफाई, चक्की पीसना, पानी भरना, सब्जी काटना, अनाज सफाई करना, सब काम यहां स्वयं ही करने हैं। सर्वमुखी सेवा ही तो हमारा ध्येय है। इस परिक्रमा में नाम और काम दोनों का पूरा परिचय भी मिलता जाता है न!

निवास के पास ही भोजनालय है। अन्न-पूर्णा का मन्दिर है, सुन्दर स्वच्छ। चारों ओर से टीन की ओट की गई है। जमीन को साफ करके पानी का छिड़काव कर दिया है। दो विभाग बने हैं। एक बार की पंक्ति के उठते ही दूसरे विभाग में दूसरी पंक्ति बैठ सकती है। सफाई होने तक भूख को रोकने की जरूरत नहीं रहती इस तरह। बड़े-बड़े हॉल हैं। दो-ढाई हजार लोग एक साथ बैठकर खा सकें, ऐसी व्यवस्था है। दोनों विभागों के बिल्कुल बीच में अन्नपूर्णा का भंडार है—आटा, दाल, चावल, घी, शक्कर से भरपूर। आशादी ने संभाल लिया है इसे, अतः उसकी सुचारुता स्पष्ट है। भोजनालय में प्रवेश करते ही लगता है मानो वही अन्नपूर्णा हैं। इन्हींसे पाना है हमें नित्य भोजन।

आधी परिक्रमा हमने पूरी कर दी। आनन्द आ रहा है न! इस अन्नपूर्णा-मन्दिर से आगे चलिये। कुछ दूर पर ही जल की नन्हीं-सी धारा बहती नजर आती है। खेतों के बीच बहती इसी धारा को बांधकर जलसंग्रह किया है। कुछ दिन पहले ही इस बांध का उद्घाटन हुआ है पूज्य बाबा के हाथ से। फावड़ा और कुदाल से मिट्टी खोद उन्होंने इस बंधी धारा को प्रवाहित कर दिया था।

और अब हर-हर करती हुई उसकी धारा बाबा के स्पर्श से ही मानो वेगमयी बन गई है। नन्हीं-सी धारा को इतना बड़ा किया है; अब यही चांदील ग्राम को नवजीवन, सूखे खेतों को नई हरियाली देगी। बाबा ने कहा था, "जल ही तो जीवन है"। सर्वोदय की स्मृति में जीवन का ही संचय तो हुआ है।

सर्वोदय-प्रदर्शनी

दूर पर वह सर्वाधिक रम्य स्थान कौन-सा दीख पड़ता है? चलिये देखें। सर्वोदय-प्रदर्शनी है यह। सबकी पूर्ति यहां है। जीवन और कला का सुन्दर योग और दर्शन, अनुभव और प्रयोगों पर निर्मित ग्राम-राज्य की कल्पना का छोटा-सा नमूना, और केन्द्र में स्थित है 'बापू-चित्रावली'। अनूठी है इसकी रचना और योजना। इसकी तो दीवारें भी बोल रही हैं। द्वार पर ही इस भूदान-यज्ञ का सूत्र अंकित है, 'सबै भूमि गोपाल की।' आगे उन्हींकी वाणी बोल रही है, 'जमीन की मांग जमाने की मांग है।' बाबा ने संत्रस्त देश को एक नई राह दिखाई है, सर्वोदय के इस प्रकाश में। इसी राह का दिग्दर्शन हम यहां के नक्शों और चित्रों में भी कर सकते हैं। इसी राह पर चलते हुए बाबा अमर संदेश दे रहे हैं। उनके ये शब्द सर्वोदय-सेवकों के रोम-रोम में मानो व्याप्त हो जाना चाहते हैं। हिंसा की दानवता से बचकर मानव को इस संत की छाया में मानवता का साक्षात्कार हुआ है। दानवता को मानवता में बदल देनेवाला यह महामानव कह रहा है, "मेरा उद्देश्य क्रांति को टालना नहीं है। मैं तो हिंसक क्रांति बचाना चाहता हूं और अहिंसक क्रांति लाना चाहता हूं। हमारे देश की भावी सुख-शांति भूमि की समस्या के शान्तिमय हल पर निर्भर है। मैं ऐसी हालत पैदा करने की कोशिश कर रहा हूं, जिसमें कानून के बंधनों से

हमारा काम रुका नहीं रहेगा। मैं तो श्रीमानों से सीधे जमीन लेता हूं और गरीबों को सीधे जमीन देता हूं।"

यह महामानव दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि बनकर जमाने की मांग को पुकारता हुआ, अहिंसक क्रांति के प्रजासूय-यज्ञ के अश्व पर चढ़कर कैसे किस दिशा में पहुंचा, इस सबका पूरा चित्रण इस चित्रावली में हुआ है। इन सबके साथ अन्य उपयोगी जानकारी के लिए भी कलापूर्ण चार्ट बनाये हैं। किस प्रान्त में कितनी उपजाऊ और कितनी बंजर भूमि है, कितने जमींदार हैं, कितने किसान और कितने खेतों में काम करनेवाले मजदूर हैं, कहां कितनी जमीन प्राप्त हुई है, कितनी भूमि का वितरण हो चुका है, कितने प्रान्तों में कहां-कहां 'भूमि-वितरक समितियां' बन चुकी हैं। इस तरह भूदान-यज्ञ के कार्य की अभी तक की लगभग पूरी रूप-रेखा इस चित्रावली में अंकित है। बहुत स्पष्ट और सरल ढंग से, थोड़ी ही समय में इतने बड़े काम की सूक्ष्म जानकारी हमें मिल गई है और कितना काम अभी तक हुआ है, इसका भी कुछ अन्दाज इससे मिल गया। और बहुत जानकारी अब कल के सम्मेलन में प्राप्त करेंगे। पृष्ठभूमि जान ली है, विवरण समझने में हमें आसानी होगी। इस प्रदर्शनी ने हृदय की गहरी अनुभूति को स्पर्श कर दिया है।

आइये, इसी भावपूरित हृदय से हम बाबा के इस यज्ञ में कैसे अपना हविर्भाग अर्पित कर सकते हैं, इसपर कुछ सोचें।

सफाई-प्रदर्शनी

अब तो हमारी परिक्रमा समाप्ति पर है। भूदान-यज्ञ की रूप-रेखा और रचनात्मक कार्य के प्रयोगों का प्रदर्शन हम यहां देख चुके। केवल एक चीज और शेष रह गई। इस प्रदर्शनी के पास ही एक छोटी-सी दूसरी प्रदर्शनी है, यह है 'सफाई-प्रदर्शनी।' जीवन

भी एक कला है। जीवन को सर्वांग-सुन्दर और परिष्कृत बनाने के लिए उसे भीतर और बाहर हर तरह से शुद्ध करना होगा। तभी जीवन की कला विकसित होगी। इसीलिए यहां बताया गया है कि जिसे हम जीवन का सबसे अछूता अंग मानते हैं, जिस कूड़े-कचरे, मैल को हम सबसे हीन समझते हैं, यहां उसीका महत्त्व बताया गया है। यही मैल हमारे देश का असली धन है, जो खाद बनकर, मिट्टी में मिलकर सोना बनता है। तरह-तरह के प्रयोग यहां बताये गए हैं। पेशाब और पाखाने दोनों का पूरा-पूरा उपयोग किस तरह हो, तथा किस तरह हम गन्दगी से बचे रह सकते हैं, इसके अभी तक के नये-से-नये प्रयोगों का प्रदर्शन किया गया है। बहुत-कुछ तालीम मिल सकती है हमें यहां।

सब तरह की तालीम लेकर जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए हम कुछ सीख सकें, तो सर्वोदय-सम्मेलन की इस परिक्रमा से हमने कुछ पाया, इसका हमें संतोष होगा। यदि इससे भी हम कुछ न सीख सके तो चलिये भाई, यहीं पास में सर्वोदय-साहित्य, सस्ता साहित्य मंडल, गीताप्रेस आदि की दूकानों में हमें बापू का, बाबा का, देश के बड़े-बड़े तत्त्वज्ञों का साहित्य है, वहीं से अपने मनो-नुकूल कुछ चुन लें। हां, बाबा का आदेश है, सिफारिश है 'गीता-प्रवचन' पढ़ने के लिए। बाबा उसपर लिख देते हैं 'नित्य पठनीय।' नित्य-चिंतन के लिए सर्वाधिक उपयोगी यह पुस्तक रहेगी। एक रुपया-खर्च करके हम लाखों की पूंजी पा लेंगे। चलो, पूर्ण परिक्रमा पर इस एक रुपये की दक्षिणा ही सही। इस दर्शन-मात्र से ही बहुत पुण्य पा लिया है। अभी तो आपको पुण्यदर्शन और पुण्यलाभ सतत ही पाना है, सर्वोदय के इस तीर्थ-मेले में।

सम्मेल

उस पं
और ब

वृद्ध स
के पास
और स
बाबा
की स
कहा,
मसला
"ता०
इस ढ
मौन

पति
विनोब
करते
समाग
देखूंगा
का भ

प्रकाशि

पांग विवेचन किया।

दिन में भी विविध प्रान्तों की अलग-अलग बैठकें होती रहीं और काम और समय की मानो प्रतिस्पर्धा ही आरम्भ हो गई। इस प्रतिस्पर्धा में सबसे अधिक ध्यान हमारा बाबा की ओर ही रहता था, जिन्हें समय और काम दोनों से ही हार न खाकर आगे बढ़ना था।

शनिवार; ७ मार्च '५३



: २९ :

भावनापूर्ण बिदाई

मेरी इच्छा तो थी कि बाबा के साथ नीमनी तक जाकर फिर उनसे बिदा लूं, पर मन की सब इच्छाएं पूरी कहां होती हैं। कुछ ईश्वरीय संयोग और बाबा के स्मरण-बल से मुझे उनके पास एक महीना रहकर सेवा का अवसर मिल गया, यही मेरे लिए क्या कम संतोष की बात थी! राजेन्द्रबाबू आज यहां से रांची गये। मुझे और दरबारजी को भी बाबा से बिदा लेनी थी। दिन-भर की व्यस्तता में भी जब चांदील से जाने का और बाबा से अलग होने का विचार आता है, मेरा दिल भर आता है, किन्तु तीन बरस की रंजू और सात साल के राजू इन दोनों बच्चों का ध्यान आते ही मां की ममता सहज ही उस ओर भी खिंचती है। इतने छोटे बच्चों के लिए तो यह भी बहुत बड़ा त्याग है। बस, आज का सारा दिन इसी तरह विविध कामों और विचारों के साथ बीत गया। केवल अपने मन के दो भाव ही, इसीलिए, मैं इस लेखनी को दे पाई हूं।

रविवार; ८ मार्च '५३

.. ..

आज का सारा दिन अनेक प्रान्तीय कार्यकर्त्ताओं के सम्मेलन, रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं की बैठकों इत्यादि में बीत गया। बाबा बहुत ही व्यस्त रहे और मुझे भी विस्तार से कुछ लिखने का समय नहीं मिला। १२ मार्च को बाबा चांदील से बिदा लेंगे, अतः सभी

कार्यकर्त्ता मानो सर्वोदय के निमित्त इसकी अन्तिम परिक्रमा कर रहे हैं।

सोमवार; ९ मार्च '५३

.. ..

आज संध्या की गाड़ी से मुझे जाना है। सवेरे तीन बजे उठकर ही मैं बाबा के पास चली गई। दो घड़ी बाबा ने मुझसे बात की और फिर अपना अध्ययन-चिन्तन आरम्भ किया। वह संस्कृत-श्लोक उच्च स्वर से पढ़ते जाते और उसका अर्थ भी मुझे समझाते जाते थे। मैं मन-ही-मन सोच रही थी कि अब इस ज्ञान-गंगा के तट से मैं दूर हो जाऊंगी और अविरल बहते इस ज्ञानामृत को न पी सकूंगी। मैं ब्राह्ममुहूर्त में बाबा के पास बैठी ज्ञानांजलि भर रही थी और बाबा की मधुर स्वर-लहरी का आनन्द ले रही थी। इस नीरव शांत पुण्यवेला में ऐसे प्रत्यक्ष पूजन का अंतिम दिन था। भावोद्रेक से मेरे श्रद्धाश्रु बाबा के चरणों में बह उठे। अपने भावावेग को मैं रोक न सकी और चुपचाप उठकर अपने कमरे में आ गई।

दोपहर को लक्ष्मीबाबू से मिलने और बिदा लेने गई। वह भी एक दूसरे फकीर और सज्जन पुरुष हैं। जैसे ही मैंने उन्हें नमस्कार किया, उन्होंने कहा, "यहां जो आता है कुछ-न-कुछ आहुति देकर जाता है, तुमने भी इस यज्ञ में अपनी आहुति दी है। कुछ दुबली गई हो। निष्ठा का यह ज्ञान बहुत कीमती है, मुझे बहुत अच्छा लगा कि तुम यहां आ पाईं।" मैंने उनसे कहा कि क्यों आप लज्जित करते हैं, मैं तो अपना कर्त्तव्य भी पूरा नहीं कर पाई। आपके आशीर्वाद से जो भी कर सकी उसके बदले तो मैंने बहुत-कुछ पा लिया है। केवल संतोष इस बात का है कि मेरे कार्य से आप और

बाबा को भी प्रसन्नता और संतोष है। बाबा का प्यार तो पहले से पाया है, चांदील के निवास में आपका सद्भाव और प्रेम पा सकी, जो मैं जीवन में कभी न भूलूंगी।"

लक्ष्मीबाबू से विदा ली, अन्य सब परिचित जनों से भी विदा ली और अब बाबा के चरणों में प्रणाम करके डायरी के इन पन्नों से भी बिदा लेती हूं।

बुधवार; ११ मार्च '५३



परिशिष्ट

कहने नहीं, सुनने-देखने आया हूं

मैं यहां ज्यादा सुनने और देखने के लिए आया था, कुछ बहुत कहने के लिए नहीं; क्योंकि मेरे दिल में इस बात का सन्देह है कि मुझे यहां कुछ बोलने और कहने का अधिकार है या नहीं, और वह इस वजह से कि जिस यज्ञ में आप पड़े हुए हैं और जिस यज्ञ का व्रत आपने लिया है, उसमें मेरा कोई हिस्सा नहीं है और कार्य रूप से मैंने इसमें कुछ भाग नहीं लिया है। तो ऐसी अवस्था में यदि मैं आपसे कुछ बातें कहूं तो उन बातों में कोई असर नहीं है; क्योंकि उनके पीछे ऐसा कोई कार्य नहीं है जो उनमें शक्ति दे सके। इसलिए मैं आपके सामने कुछ ज्यादा कहना नहीं चाहता। इतना ही कहना चाहता हूं कि आपने जो काम आरम्भ किया है वह एक बहुत बड़ा काम है और जो काम जितना बड़ा होता है, उसमें कठिनाइयां भी उतनी बड़ी होती हैं। मगर बड़ी कठिनाइयों को पार करके उनपर विजय प्राप्त करना ही पुरुषार्थ है। जितनी अधिक कठिनाइयां होगीं, उतना अधिक बल लगाकर शक्ति उपार्जित करनी चाहिए। और जितना आप जीतेंगे उतना ही पुरुषार्थ प्रकट होता जायगा। तो मैं यही आशा रखता हूं कि आप जिस काम में लगे हैं, जहांतक हो सके उसे आगे बढ़ाते जायं। मुझे यहां आकर और एक बात देखकर प्रसन्नता हुई। जो मंडली यहां बैठी है, उसमें बहुतेरे परिचित चेहरे नजर आये, जिनके साथ एक साथ काम करने का मुझे मौका मिला है। किन्तु बहुतेरे नये

चेहरे भी नजर आये। नये चेहरे देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। नये चेहरों का देखना एक नई आशा की बात है। पुराने जो मित्र हैं, उनसे मिलने का जितना दिल में उत्साह होता है वह तो होगा ही, उसके साथ-साथ नये चेहरों को देखकर और भी ज्यादा उत्साह आयेगा। नये भाई काम के लिए तैयार होंगे। बावजूद इन कठिनाइयों के आपका काम आगे बढ़ेगा, ऐसी मुझे आशा है।

हम भटक गये

सर्वोदय का काम कई प्रकार से और कई तरीके से हो रहा है। महात्माजी ने अपना कार्यक्रम बहुत तरीके से हमारे सामने रखा, लेकिन हम उसे पूरा नहीं कर पाये हैं। और जो आशा की जाती थी कि अधिकार जब हमारे पास आयगा और शासन का भार हम अपने ऊपर उठा लेंगे तो उस कार्यक्रम को बहुत तेजी के साथ बहुत आगे ले जा सकेंगे, वह आशा पूरी नहीं हुई और कह भी नहीं सकते कि वह कब पूरी होगी। बात यह है कि गवर्नमेंट में जो लोग हैं वे ऐसी ही अवस्था में हैं। मनुष्य हिचकिचाहट में पड़ जाता है तो निर्णय नहीं कर पाता। जिन प्रश्नों को हल करने के लिए कुछ उत्साह भी हो और सिद्धान्त रूप से जिन्हें मानें, उन्हें कार्य का रूप देकर और काम में ला करके उस उत्साह की पूर्ति करने का हममें साहस नहीं है। यह चकाचौंध, जो हमारे सामने है, उससे हमारी आंखें दूसरी तरफ पहुंच जाती हैं और हम अपने सामने ऐसे आदर्श रख लेते हैं कि हम दूसरों के जैसे क्यों न हो जायं। दूसरों से स्पर्धा करना, मुकाबला करना अच्छा है; लेकिन उसमें कोई बुराई नहीं आनी चाहिए। जो हमें दिया गया है जो हमें बताया गया है, उसे पूरी तरह से जांचे बिना, काम में लाये बिना, पूरी तरह से अनुभव किये बिना दूसरी तरफ देखना या

ताकना बुद्धिमत्ता नहीं है। पर आज हममें बहुत ऐसे हैं। जो बहुत लोग गवर्नमेंट में हैं, उनके सामने जो बनी-बनाई चीज मिल गई उसे ढोये चले जा रहे हैं। हमारा ढर्रा पुराना ही है। जो हमारे सामने आदर्श थे, उनपर हम नहीं चल सकते और यह मानने लगे कि हम उनपर पूरी तरह से नहीं चल सकते और उनपर उतना विश्वास भी नहीं है। सर्वोदय-समाज की जो इस वक्त सबसे बड़ी आवश्यकता है, देश में उसके लिए जो उत्साह है, उसमें जितने काम करनेवाले हैं, मेरी आशा है कि वे इसे समझकर इस रास्ते पर चलते हैं और अगर चलते जायंगे तो हो सकता है कि ऐसा समय आये कि वे भी आपके रास्ते पर आ जायं; क्योंकि सिद्धान्त रूप से हम इस बात को मानते जरूर हैं, पर कार्यरूप से हम उसे नहीं कर पाते हैं। हम कार्य करें या न करें, उद्देश्य तो अपनी जगह पर है। आप इसमें लगे हुए हैं, इसे अपना ध्येय मानकर उसी प्रयत्न में आप लगे रहेंगे तो आपका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि जो भूले-भटके हैं, उनको भी इसमें लाने का प्रयत्न करें।

मैं तो इसलिए आया हूं कि आपके समागम से, सत्संग से, सहवास से मेरा ध्यान इस तरफ जाय। आपके लिए तो यह कोई नई बात नहीं है, मगर मैं कुछ भूला-भटका हूं। इस तरफ झांकने का, सत्संग का भी मौका मिल जाय तो बहुत बड़ी बात है। और जो देखूंगा, यहां सुनूंगा उससे मुझे लाभ-ही-लाभ होगा।"

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद का भाषण
सर्वोदय-सम्मेलन, चांदील
७ मार्च, १९५३

नई क्रांति करनी होगी

यह मेरे लिए पहला ही मौका है सर्वसेवा-संघ की बैठक में हिस्सा लेने का। मैं बहुत देर तक बातें सुनता रहा और कुछ ख्याल बोलने का नहीं था, लेकिन बातें सुनते हुए कुछ विचार उठे तो मैंने सोचा कि आपके सामने पेश करूं। अभी आप तो एक खास सवाल पर गौर कर रहे हैं, लेकिन मैं उसी सवाल के ऊपर नहीं बल्कि जो हमारे सामने और आपके सामने आम सवाल हैं, देश भर के, उसके सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना चाहता हूं। आप सब लोगों से देश को बहुत बड़ी आशा है। सरकार से लोग निराश हैं और भिन्न-भिन्न दलों ने भी लोगों में आशा पैदा नहीं की। इसलिए वह आपसे अधिक आशावान् हैं। लेकिन आपकी जैसी बहस मैं सुन रहा था, उससे मुझे ऐसा लग रहा है कि उनकी वह आशा शायद पूरी नहीं होगी। आपके कुछ विचार हैं, उन्हें गांधीजी के नाम से पुकारें या सर्वोदय-विचार के नाम से; लेकिन जो साधारण लोग हैं, उनके जो संस्कार हैं, अगर आपकी और उनकी दूरी इतनी बढ़ जाय कि एक तो हिमालय पर चढ़ा है और एक गड्ढे में बैठा है, तो आप कैसे उनकी सेवा कर सकेंगे, यह मेरी समझ में नहीं आता। आपको इसकी अधिक चिन्ता है कि हमारे जो विचार हैं, उन्हें अधिक सुरक्षित रखा जाय, जैसे अपनी जात का कोई बचाव चाहता हो। तो ऐसे किस तरह काम होगा, क्योंकि आपके सामने जो समस्या है, उसके लिए आप अपने-अपने प्रयोग करें तो उसके लिए देश की समस्या टिकी रहेगी, ऐसा मुझे नहीं लगता। देश की जो समस्या है, उसका हल होना चाहिए, देश को आगे बढ़ाना चाहिए। आप छोटे-छोटे गांव लेकर बैठें और वहां अपने प्रयोग करें, यह संभव है; लेकिन आपको इतिहास इतना समय देनेवाला हो, ऐसा

मुझे नहीं लगता। तो फिर आपको विचार करना चाहिए कि जो रचनात्मक कार्य हैं, सत्ता का जो क्षेत्र है, सत्ता को हाथ में लेकर के समाज के रूप का यह आर्थिक संगठन बना देने का काम है, उससे आप अलग हैं और वे आपसे अपने-आपको अलग रखना चाहते हैं। जबतक सोलह आने बात नहीं होगी, आप उसमें हाथ नहीं लगायेंगे।

कोई भी हुकूमत हो, हुकूमत का जैसा स्थान है, उसका काम है कानून बनाने का और अपनी नीति पर अमल करने का। उससे बड़े-बड़े परिवर्तन गलत-सही भी हो जायंगे और आप अपने इस विचार को लेकर बैठे रहेंगे तो मैं फिर वही निवेदन करूंगा कि आप जो करना चाहते हैं, वह नहीं कर सकेंगे और बहुत नम्रता से निवेदन करूंगा कि आपको फिर सोचना होगा कि किस तरह से काम करना होगा।

विनोबा ने भूदान शुरू किया और उसमें मैं आकर शरीक हुआ। यह इसलिए हुआ कि मुझे लगा कि देश की जो बड़ी भारी समस्या है, उसे हल करने के लिए एक बड़ा भारी रास्ता मिला और वह ऐसा रास्ता नहीं है कि एक गांव में बैठकर हम प्रयोग कर रहे हैं बल्कि देशभर में, गांव-गांव में, यह काम बढ़ता जायगा। यह काम कोई पचास बरस में खतम होने जा रहा है, ऐसा नहीं है; लेकिन एक आग विनोबाजी के हृदय में लगी है और वह देश में भी दीखती है तो ऐसा लगता है कि वह हो सकता है। किसी देश में भी इतनी तेजी से उसका हल नहीं हुआ है। रूस और चीन में भी इतनी सारी डिक्टेटरशिप होने पर भी २५ साल लगे, इस सवाल को हल करने में। तो एक दिन में कोई बदल दे, ऐसा नहीं हुआ। दो-तीन बरस में भी यह यहां हो जाय तो देश की एक बड़ी समस्या

हल होगी। भूदान-यज्ञ का जो काम शुरू हुआ वह यह सोचकर शुरू नहीं हुआ कि गांव की सारी जमीन गांव की हो। लेकिन उस विचार के गर्भ में से यह काम पैदा हुआ है। गांव की सारी जमीन गांव की हो, इस विचार को अमली रूप से माननवाले पैदा हो रहे हैं, जो समझ रहे हैं कि इसके सिवा कोई हल नहीं है। सर्वसेवा-संघ के जो सारे मित्र हैं, उन्हें सोचना है कि वे इस काम को ले लें।

इस बात का विश्वास जीवन में रखना है कि जो कुछ देश में आज हो रहा है वह जैसा कि आप अलबत्ता मानते हैं उस मापदंड से अशुद्ध ही है। लेकिन उससे आप अपने हाथ नहीं खींच सकते। यह हम मान करके बैठें कि हुकूमत से वह चल रहा है, कुछ भी हो उनका काम तो चलता ही है और आप कहें कि उनका रास्ता दूसरा है, आपका दूसरा है तो मुझे यह ठीक नहीं लगता।

दूसरी बात एक और मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं। गांव में मेरा घर है। मैं गांव का रहनेवाला हूं। इधर गांव में मैं काफी घूमा हूं। जिस गांव ने सारी जमीन दे दी है उसमें मैं गया। मैंने देखा कि गांव का जो मानस है वह सर्वोदय से मेल नहीं खाता। कोई करोड़पति न हो, कोई जमींदार न हो तो भी हरेक का ख्याल यह रहता है कि हम ज्यादा पैसा कमा लें। चोरी-चकोरी करनेवाले लोग भी होते ही हैं। ये जो विचार आप उनके बीच रखकर के उनसे काम कराना चाहते हैं तो मुझे ऐसा लगता है कि बहुत थोड़े गांव हमें ऐसे मिलेंगे। अधिकतर गांव ऐसे हैं, जिनका मानस इसके लिए तैयार नहीं है। कम्प्रोमाइज़ आपको करना है। कुमारप्पाजी ने कहा कि दो-चार गांवों में इसका प्रयोग आप करें। मैं नहीं मानता हूं कि इस समस्या का हल प्रयोग से होगा। प्रयोगशाला के रूप में आप प्रयोग करें, लेकिन कर्तव्यशाला के रूप में वह नहीं हो सकेगा।

मुझे ऐसा लगता है कि देश को सबसे अधिक आपसे आशा है। यदि वह पूरी नहीं होगी तो देश का भविष्य भी अच्छा नहीं होगा।

ऊंच-नीच का भेद है, जातियों का भेद है। गांवों में ऐसे भी लोग हैं, जो हाथ से हल नहीं चलाते; उनका कहना है कि उन्होंने जमीन तो दे दी; पर फिर आप कहेंगे कि हल भी चलाओ, जमीन भी खोदो, गड्ढे भी बनाओ और यह भी कहेंगे कि आपकी औरतों को रोपनी भी करनी होगी। इस बात को वे नहीं मानेंगे। वे अपना खीमा उठाकर दूसरे गांव में चले जायंगे। तो ऐसा नहीं चलेगा। एक गांव जहां अहीर रहते हों वहां वैसा हो सकता है। पर जैसे भी लोग हों, उन्हें लेकर ही आपको अपना काम करना है। आप उनको अपनी जगह पर लायेंगे तो भी काम होगा, ऐसा नहीं हो सकता। बड़े पैमाने पर काम हो, कुछ प्रयोग हों, आपका जो कांचन-मुक्ति का प्रयोग है वह करें, पर इससे गांव में से कार्यकर्त्ता हमें नहीं मिलेंगे। ये लोग मिट्टी के बने हुए हैं, ऐसा समझकर ही काम करना है। आप उन्हें सोने का बना लें--

भिन्न-भिन्न संस्थाओं का काम होता आया है। सब संस्थाओं के परिचय में मैं नहीं आया हूं; लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि अब समय आया है कि उन संस्थाओं को तोड़ दें और एक नई संस्था बनायें, देश के नये नक्शे के अनुसार। तो यह काम जो आपके सामने है, वह आप कर सकेंगे, ऐसा मुझे लगता है। नई क्रांति करनी होगी और एक नया जमाना संगठन के रूप में आपको बनाना होगा।

श्री जयप्रकाश नारायण का भाषण
सर्व-सेवा-संघ की बैठक में,
चांदील; ६ मार्च, १९५३

राज्य सरकारों की स्वीकृतियां

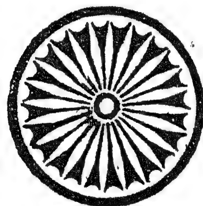
पंजाब राज्य—सेन्ट्रल लाइब्रेरी कमेटी पंजाब के परिपत्र No. PRD-LIB-61/22937 चंडीगढ़ दिनांक १५-७-६१ द्वारा स्वीकृत

हिमाचल प्रदेश—डायरेक्टर आफ पंचायत्स हिमाचल प्रदेश के परिपत्र No. 7-1/61-PANCH शिमला दिनांक १२-६-६१ द्वारा स्वीकृत

राजस्थान राज्य—डिप्टी डायरेक्टर आफ सोशल एज्यूकेशन, राजस्थान के परिपत्र संख्या DDSE/GENL/D/G/12/SPL/61 जयपुर दिनांक १०-८-६१ द्वारा स्वीकृत

अन्य राज्य—मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, गुजरात, मैसूर, आंध्र आदि राज्य सरकारों द्वारा भी शीघ्र ही स्वीकृति प्राप्त हो रही है।

पाठ्य-पुस्तक—'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' मद्रास की राष्ट्रभाषा विशारद (पूर्वार्द्ध) परीक्षा के द्वितीय प्रश्न-पत्र में पाठ्य-पुस्तक के रूप में लगी है।



कुछ सम्मतियाँ

चि. ज्ञान,

.....पुस्तक मिली। थोड़ी देख भी ली। अच्छी लिखी है। साथ रहने का अवसर मिला, उसका लाभ समाज को देने की वृत्ति हुई, यह खुशी की बात है।....

—विनोबा के आशीर्वाद

जिन्होंने विनोबाजी के साथ थोड़ा भी समय गुजारा है, वे जानते हैं कि किस प्रकार उनकी वाणी से बराबर ज्ञान की धारा प्रवाहित होती रहती है। बहिन ज्ञानवती दरबार ने ठीक ही उसे ज्ञान-गंगा कहा है, और यह सौभाग्य है कि उस निर्मल-धारा में से कुछ अंजलियां संचित कर उन्होंने हम सबके सामने रख दिया है। इसके लिए विदुषी लेखिका का हमें आभार मानना चाहिए।

—जयप्रकाश नारायण

किताब का नाम बहुत ही अन्वर्थक है। बहुत कम लोग जानते हैं कि विनोबा जमीन की भीख मांगते-मांगते पैदल फिरते हुए हर तरह अनुभवात्मक ज्ञान का प्रसार करते हैं। आपने एक आकस्मिक प्रसंग का उपयोग वाचकों को ज्ञान-गंगाजी के पानी पिलाने में किया, यह एक बड़ी इष्टापत्ति है।

भाषा भी कितनी सरल और सुन्दर है! आपने कुछ नये शब्द भी निर्माण किये हैं जोकि बहुत उचित है—जैसे कि 'स्रोतस्विनि', 'आत्म-विस्मृत', 'कर्मचेतना' इत्यादि।

विषय संग्रह भी काफी विविध है और हर विषय पर पूर्ण विचार बताये गए हैं कि जिससे पढ़नेवालों को तृप्ति का अनुभव होता है।

आशा है कि आपकी लेखनी से ऐसी ही किताबें निकलती रहें और हिन्दी-वाचकों को उनसे लाभ मिलता रहे।

—आर. आर. दिवाकर

इस पुस्तक के लिए मैं आपको बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि यह पुस्तक जनता द्वारा अपनाई जायगी ।

—जाकिर हुसैन

(राज्यपाल, बिहार राज्य)

मैंने सुश्री ज्ञानवती दरबार द्वारा लिखित 'विनोबा की ज्ञानगंगा में' आद्योपान्त पढ़ी । विषय सुपरिचित और शैली आकर्षक है, इसलिए भावों की गरिमा सरलता से हृदयंगम होती गई है । ये डायरी के पन्ने विनोबा के जीवन-दर्शन का यथार्थ अंकन हैं । लेखिका की श्रद्धा ने जहां विषय को गति दी है वहां सर्वोदय-सम्बन्धी विचारों को साहित्यिक पृष्ठ-भूमि प्रदान की है । जिसे साहित्य प्रिय है, वह इस पुस्तक को पढ़कर सर्वोदय की ओर झुकेगा और जिसे सर्वोदय से स्नेह है वह इस ज्ञान-गंगा में स्नान कर कृतकृत्य होगा । कम-से-कम मेरा अपना यही अनुभव है । मैं इन दोनों ही पक्षों से प्रभावित हुआ हूं ।

ज्ञानवती की साहित्यिक प्रतिभा को देखकर मुझे विश्वास होता है कि हिन्दी साहित्य को उनसे अभी बहुत-कुछ मिलेगा ।

—यशवंतराव चव्हाण

(मुख्य मंत्री, महाराष्ट्र राज्य)

'विनोबा की ज्ञान-गंगा में' को देखा और कई भागों को पढ़ा । पुस्तक को अत्यंत रोचक और उपादेय पाया । जिस सरस और सरल भाषा में पूज्य विनोबाजी के जीवन की झांकी प्रस्तुत की है, उसके लिए आप निश्चय ही बधाई की पात्र हैं । मुझे विश्वास है कि पुस्तक का आम जनता में अच्छा स्वागत होगा ।

—मोहनलाल सुखाड़िया

(मुख्य मंत्री, राजस्थान)

मैं आपकी पुस्तक देख गया। उसके कई अध्याय पढ़े। औपचारिक बात नहीं कहता, इस सुन्दर रचना के लिए आप वस्तुतः बधाई की पात्र हैं।

विनोबाजी के विषय में कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, लिखी जायंगी। इनमें उनके जीवन-चरित्र का विशद वर्णन होगा, उनके विचारों पर ऊहा-पोह होगा, आलोचन-प्रत्यालोचना होगी। पुस्तकें अपने ढंग की अच्छी होंगी। आपने पुस्तक नहीं लिखी है, विनोबाजी के जीवन के कई चलचित्र लिये हैं। विनोबा जैसे हैं वह उनकी ही जुबान, उनके गंभीर विचारों से, हँसी-मजाक से, कामों से,—पढ़नेवाले के सामने रख दिया है। उनकी साधुता, उनका दार्शनिक दृष्टिकोण, उनकी धर्म के प्रति श्रद्धा और उनका 'मनुष्यपन' सब सामने है। इन स्फुट चित्रों को मिलाकर पाठक उनकी 'कृत्सना' का चित्र बना सकता है। विशेष अवसरों पर की दूसरी बात है, परन्तु दिन-प्रतिदिन, हर काम में, हर समय, कृत्रिमता नहीं बरती जा सकती। हमारे सामने उनका सहज स्वरूप आ गया है। उनके विचारों से किसीको सहमति हो या नहीं, यह दूसरी बात है।

मैं आपको एक बार फिर बधाई देना चाहता हूं। भक्त अपने श्रद्धापात्र के स्वरूप को अजानन्नपि सुन्दर रंगने की चेष्टा करता है और इस प्रकार दूषितरंजन का अपराधी बन जाता है। जहांतक मैं देख पाया हूं, आपकी पुस्तक में यह दोष नहीं है। यह बहुत बड़ी बात है।

—सम्पूर्णानन्द

—पुस्तक को मैं जितना देख सका, उससे मन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। शैली स्वाभाविक किन्तु हृदयग्राही है और पुस्तक में पूज्य विनोबाजी के जीवन व विचारों के संबंध में नई बातें जानने को मिलीं। मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक का हिन्दी-जगत् में अच्छा स्वागत होगा और बहुत-से रचनात्मक कार्यकर्ता तथा अन्य व्यक्ति जो पूज्य विनोबाजी के विचारों में दिलचस्पी रखते हैं, इसे ध्यान से पढ़ेंगे।

—श्रीमन्नारायण

'विनोबा की ज्ञान-गंगा में' पढ़ गया। पुस्तक को आद्योपांत पढ़ने पर पहला प्रभाव जो मेरे मन पर पड़ा, वह यह है कि पुस्तक जिस निष्ठा के साथ लिखी गई है, वह अक्सर इस प्रकार की पुस्तकों में देखने को नहीं मिलती। निष्ठा-भावना के अतिरिक्त इसका दूसरा गुण विनोबाजी के विचारों को ईमानदारी से ज्यों-का-त्यों व्यक्त कर देना है। अधिकतर देखा यह जाता है कि लेखक अपनेको बहुत कम तटस्थ रखकर बिना तोड़-मरोड़ किये लिख पाता है। विषयों का क्रम सुन्दर ढंग से आयोजित है। जैसे-जैसे पाठक पृष्ठों में प्रवेश करता जाता है, विनोबाजी की विलक्षणता, शारीरिक शक्ति, बुद्धि की तीक्ष्णता, विनोद, विचार, कार्य-पद्धति आदि से सहज ही परिचित होता जाता है। भाषा में प्रवाह और शैली प्रसाद गुणयुक्त है। आप इतनी अच्छी हिन्दी लिख लेती हैं, यह वास्तव में हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत है।

उखड़े हुए लोगों को पुनःस्थापित करने, निराशों में उत्साह का संचार, दिग्भ्रमित को दिशा ज्ञान, कर्त्तव्याकर्त्तव्य में कर्तव्य का बोध कराने में यह पुस्तक संजीवनी का काम करेगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। इस रचना के द्वारा निःसंदेह सत्साहित्य की वृद्धि हुई है। उसके लिए मेरी हार्दिक बधाई है।

—मामा वरेरकर

संत विनोबा की ज्ञान-गंगा में अवगाहन करने का जिसे भी अवसर मिला, उसका जीवन वस्तुतः धन्य है। इधर १० वर्षों से यह गंगा देश के कोने-कोने को छूती हुई पुनीत करती आ रही है। ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी ने न जाने कितनों के जीवन को प्रयाग बना दिया है। विनोबा का सत्संग—चाहे वह अल्पकाल का ही हो—सुलभ होते हुए भी भाग्य से ही प्राप्त होता है। उस सत्संग की महिमा को हममें से कितनों ने जाना !

लेखिका ने अपनी इस डायरी द्वारा इस ज्ञान-गंगा में स्थान-स्थान पर श्रद्धाभावनापूर्वक आकंठ अवगाहन किया है, विनोबा को समीप से देखा है, उनकी वाणी को हृदयंगम किया है और इस प्रकार अपने-आपको कृतार्थ। स्वार्थ-भावना से काम न लेकर लेखिका ने दूसरों को भी संत के जीवन की यह अनमोल प्रसादी बांटी है।

—वियोगी हरि

पूज्य विनोबाजी के जीवन और उनके जीवन-दर्शन का थोड़े में परिचय प्राप्त करने के लिए ज्ञानवतीजी की यह पुस्तक अवश्य ही पठनीय है। विनोबाजी के निकट-सम्पर्क में रहने के कारण वे इसके लिखने की अधिकारिणी हैं। उन्होंने अपने अधिकार का श्रद्धापूर्वक सदुपयोग किया है। पुस्तक सरल होने के साथ सुन्दर और सरस है, इसका कहना ही क्या। इसका बहुत प्रचार वांछनीय है।

—मैथिलीशरण गुप्त

'विनोबा की ज्ञान-गंगा में' पुस्तक की प्रति भेजने के लिए अनेक-अनेक धन्यवाद! मैं पुस्तक देख गया हूं। आपने प्रशंसा के योग्य पुस्तक लिखी है। बधाई!

महापुरुषों की संगति में रहकर उनके विचारों का संचय करना, फिर उन्हें रोचक विवरण के रूप में लिख डालना, यह कठिन कार्य है। आपको इस कठिन कार्य में थोड़ी नहीं, बहुत सफलता मिली है।

आपकी बुद्धि स्वच्छ, भाषा सीधी-सादी पर समर्थ तथा हृदय भक्ति से ओतप्रोत है। सारी पुस्तक अत्यन्त रोचक और ज्ञानवर्धक उतरी है। विनोबा का प्रकरण जब श्रद्धालु लेखक लिखता है, तब कहीं-कहीं उस विवरण में उपनिषदों का स्वाद आने लगता है। वह स्वाद आपकी पुस्तक में भी यत्र-तत्र है। इसे मैं बहुत बड़ी सफलता मानता हूं।

महापुरुषों की संगति का आपने सच्चा लाभ उठाया है। आपका भविष्य लेखिका के रूप में भी उज्ज्वल है। और अक्षरों के भीतर आपका जो भक्तिविह्वल पुनीत हृदय दिखाई पड़ता है वह तो पूजा और वन्दना के योग्य है। बधाई!

—रामधारीसिंह दिनकर

. . . . पुस्तक में अनेक विषयों पर विनोबाजी के विचारों का बड़ा जानकारीपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। ये विचार इतने मौलिक और स्पष्ट हैं कि पाठक को सहज ही मोह लेते हैं।

—विष्णु प्रभाकर

डा० ज्ञानवती दरबार ने 'विनोबा की ज्ञान-गंगा में' पुण्यस्नान के फल का उपभोग स्वयं अपने लिए ही नहीं, वरन् इस पुस्तक के द्वारा औरों के लिए भी सुलभ कर दिया है। इसके विवरणों के पढ़ने पर ऐसा मालूम होता है जैसे हम साक्षात् विनोबाजी के दर्शन कर रहे हैं और उनकी वाणी सुन रहे हैं। शैली की सफलता इसीमें है कि वह वर्णनीय विषय को मूर्तिमान् कर दे। ज्ञानवतीजी की लेखनी में यह शक्ति प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। मुझे पूरा विश्वास है कि सर्वोदय-साहित्य में इस पुस्तक का ऊंचा स्थान होगा। इस सफल कृति के उपलक्ष्य में ज्ञानवतीजी को मेरी हार्दिक बधाइयां हैं।

—विश्वनाथ प्रसाद

(डायरेक्टर, केन्द्रीय हिन्दी डायरेक्टोरेट)

....इस पुस्तक में स्वयं विनोबाजी साकार रूप में उपस्थित हैं। उठते, बैठते, चलते, फिरते सब अवसरों में वे देखे जाते हैं। इस प्रकार इस पुस्तक में उपन्यास, जीवनी, सामयिक, राजनीतिक वातावरण और विनोबाजी के व्यक्तित्व और विचारों की एक साथ संयोजना की गई है। इस सफल निर्माण के लिए मैं लेखिका को साधुवाद देता हूं।

—नंददुलारे वाजपेयी

(अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय)

...'विनोबा की ज्ञान-गंगा में' अवगाहन कर हिंसा-जर्जर, निष्करुण युग का प्राणी अपने ताप को दूर कर सकेगा, इस विश्वास के साथ मैं इस रचना का स्वागत करता हूं।

—कुंजीलाल दुबे

(स्पीकर, मध्यप्रदेश-विधानसभा)

आपकी सुन्दर पुस्तक मिली, पढ़कर प्रसन्नता हुई। वास्तव में यह पुस्तक विनोबा के स्वभाव और विचारों पर अच्छा प्रकाश डालती है। बधाई स्वीकार करें।

—प. अ. वारान्निकोव

(रूस के हिन्दी विद्वान)

पत्र-पत्रिकाओं की दृष्टि में

....इस पुस्तक के प्रकाशन से विनोबाजी के संस्मरण-साहित्य में एक खोई हुई कड़ी फिर जुड़ जाती है।

'भूदान-यज्ञ' (वाराणसी)

.... प्रस्तुत पुस्तक से विनोबाजी के दैनिक कार्यक्रम तथा सामाजिक जीवन के हर महत्त्वपूर्ण पहलू पर उनके विचारों की झांकी मिलती है। विनोबाजी के प्रति लेखिका की असीम श्रद्धा और आत्मीयता के कारण वर्णन भावपूर्ण है।

—'राष्ट्रवाणी' (पूना)

यह मनोरंजक और उपयोगी पुस्तक वास्तव में श्रीमती दरबार की डायरी के पन्ने हैं। बाबा की दिनचर्या, उनके विचारों तथा उनकी कार्य-पद्धति पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। पुस्तक की शैली मनोरंजक है।

—'आजकल' (दिल्ली)

लेखिका ने विनोबा के विचारों को इस तरह संजोया है जैसे कोई जौहरी बहुमूल्य रत्नमाला को सजाता है। प्रवाहमयी भाषा और सरल शैली से पुस्तक बहुत ही रोचक बन गई है।

—'दैनिक विश्वमित्र' (कलकत्ता)

पुस्तक में लेखिका ने सहज अनुभूतियों की सच्चाई से अभिव्यक्ति की है। उनकी यही सच्चाई पाठकों को प्रभावित करती है।

—'नई दुनिया' (इन्दौर)



ऑलिवर गोल्डस्मिथ के हास्यपूर्ण नाटक

'She Stoops to Conquer'

का हिन्दी रूपान्तर

अनुवादिका

डा. ज्ञानवती दरबार

प्रस्तावना

मामा वरेरकर

मूल्य दो रुपये

रंजन-प्रकाशन

७, टॉल्स्टाय मार्ग; नई दिल्ली



ऑलिवर गोल्डस्मिथ के व्यंगात्मक नाटक

'The Good Natured Man'

का हिन्दी रूपान्तर

अनुवादिका

डॉ. ज्ञानवती दरबार

प्रस्तावता

विष्णु प्रभाकर

मूल्य दो रुपये

रंजन-प्रकाशन

७, टॉल्स्टाय मार्ग; नई दिल्ली

हमारे अन्य प्रकाशन

१. भारतीय नेताओं की हिंदी-सेवा रु. १५.००

सन् १८५७ से १९५७ तक के सौ वर्षों में राष्ट्रीय नेताओं का हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में योगदान और प्रभाव का विशद अध्ययन। पंजाब-विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध-प्रबंध।

२. सज्जनता की विजय रु. २.००

सुप्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक ऑलिवर गोल्डस्मिथ के शिक्षाप्रद नाटक 'दी गुड-नेचर्ड मैन' का हिंदी-रूपान्तर।

३. दुलहिन की जीत रु. २.००

सुप्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक ऑलिवर गोल्डस्मिथ के हास्य-व्यंग्यपूर्ण नाटक 'शी स्टूप्स टु कांकर' का हिन्दी-रूपांतर।

४. भारत की झांकियां

भारत के कुछ प्रसिद्ध स्थलों तथा विभिन्न प्रान्तों का रोचक तथा बोधप्रद वर्णन; अनेक सुंदर चित्रों से युक्त।

५. लेखों का गुलदस्ता

रूस, जापान, इंडोनेशिया तथा श्रीलंका आदि देशों का सांस्कृतिक स्वरूप प्रस्तुत करनेवाले तथा विविध विषयों के लेखों का संग्रह। बहुत-से सुंदर चित्रोंसहित।

रंजन-प्रकाशन,

७, टॉल्स्टाय मार्ग; नई दिल्ली